अतिमा

श्रीसुमित्रानंदन पंत

ग्रन्थ-संख्या—१८६

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती भंडार,

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

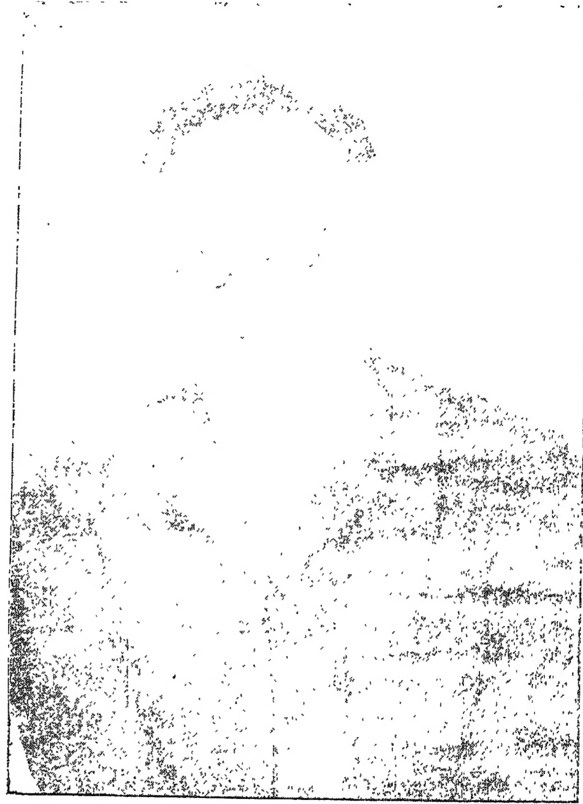
सं० २०१२ वि०

मूल्य चार रुपए

मुद्रक

लीडर प्रेस

इलाहाबाद



श्री देवीदत्त पंत

दिवंगत भाई देवीदत्त की

स्नेह स्मृति को

विज्ञापन

अतिमा का प्रयोग मैंने अतिक्रांति अथवा महिमा के अर्थ में किया है, जिसे अंग्रेजी में ट्रान्सेन्डेन्स कहते हैं : वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक मानसिक सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।

प्रस्तुत संग्रह में, प्रकृति संबंधी कविताओं के अतिरिक्त, अधिकतर, ऐसी ही रचनाएं संगृहीत हैं जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में मूर्त हुई है।

अतिमा में अप्रैल '५४ से लेकर फरवरी '५५ तक की मेरी ५५ रचनाएं संचित हैं।

(२१ फरवरी '५५) श्री सुमित्रानंदन पंत

संशोधन

कृपया पृष्ठ ९६, पंक्ति १२ में 'जिह्म गति' के स्थान पर 'जिह्मग गति' पढ़िए।

सूची

अ ति मा

कौन छेड़ता मुरली स्वर, धर स्वप्न चरण लघु भार,
मंदिर के आँगन में किसकी गूँज रही पद चाप?
आः, यह गोपन हृदय प्रांत या मधुर स्वर्ग का द्वार?
देवदूत सा प्रेम, प्रतीक्षा में कब से चुपचाप!

नव अरुणोदय

तुम कहते, उत्तर बेला यह,
मैं संध्या का दीप जलाऊं!
तुम कहते, दिन ढलने को अब,
मैं प्राणों का अर्घ्य चढ़ाऊँ!

मेरा पंथ नहीं, मैं कातर
ज्योति क्षितिज निज खोजूँ बाहर,
रहा देखता भीतर, अब क्या
तथ्यों का कटु तम लिपटाऊँ!

मैंने कब जाना निशि का मुख?
पृथक् न सुख से ही माना दुख!
अंधकार की खाल ओढ़ अब
कज्जल में सन, प्राण तपाऊं?

कभी न निज हित सोचा क्षण भर
क्यों अभाव, क्यों दैन्य, घृणा ज्वर,
अब क्या तारों के खँडहर में
नग्न व्यथा की गाथा गाऊँ!

देख दिवाकर को अस्तोन्मुख
पंकज उर होता अंतर्मुख,
युग संध्या, तम सिन्धु, ह्रास तट,
स्वर्ण तरी किस तीर लगाऊँ!

मैं प्रभात का रहा दूत नित,
नव प्रकाश सन्देशवाह स्मित,
नव विकास पथ में मुड़ मैं अब
क्यों न भोर बन फिर मुसकाऊँ!

जग जीवन में रे अस्तोदय,
मैं मानस धर्मा, अक्षय वय,
आओ, तम के कूल पार कर
नव अरुणोदय तुम्हें दिखाऊँ!

गीतों का दर्पण

यदि मरणोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो कटु मन,
उठते हों न निराश लौह पग,
रुद्ध श्वास हो जीवन !

रिक्त बालुका यंत्र,—खिसक हों
चुके सुनहले सब क्षण,
तर्कों वादों में बंदी हो
सिसक रहा उर स्पंदन !

तो मेरे गीतों में देखो
नव भविष्य की झाँकी,
निःस्वर शिखरों पर उड़ता
गाता सोने का पाँखी !

चीर कुहासों के क्षितिजों को
भर उड़ान दिग् भास्वर,
वह प्रभात नभ में फैलाता
स्वर्णिम लपटों के पर !

दुबिधा के ये क्षितिज,—
मौन वे श्रद्धा शुभ्र दिगंतर,
सत्यों के स्मित शिखर,
अमित उल्लास भरे वे अंबर!

नीलम के रे अंतरिक्ष,
विद्रुम प्रसार दिग् दीपित,
स्वप्नों के स्वर्गिक दूतों की
पद चापों से कंपित!

प्राणों का पावक पंछी यह,
मुक्त चेतना की गति,
प्रीति मधुरिमा सुषमा के स्वर,
अंतर की स्वर संगति!

उज्वल गैरिक पंख, चुंचु
मणि लोहित, गीत तरंगित,
नील पीठ, मुक्ताभ वक्ष,
चल पुच्छ हरित दिग्लंबित!

दृढ़ संयम ही पीठ, शांति ही
वक्ष, पक्ष मन चेतन,
पुच्छ प्रगति क्रम, सुरुचि चंचु,
लंठित छाया भू जीवन!

हीरक चितवन, मनसिज शर-से
स्वर्ण पंख निर्मम स्वर,
मर्म तमस को बेध, प्रीति व्रण
करते उर में निःस्वर!

दिव्य गरुत रे यह, उड़ता
सत् रज प्रसार कर अतिक्रम,
पैने पंजों में दबोच, नत
काल सर्प सा भू तम!

वह श्रद्धा का रे भविष्य,—
जो देश काल युग से पर,
स्वप्नों की सतरँग शोभा से
रँग लो हे निज अंतर!

मन से प्राणों में, प्राणों से
जीवन में कर मूर्तित,
शोभा आकृति में जन भू का
स्वर्ग करो नव निर्मित!

उस भविष्य ही की छाया
इस वर्तमान के मुख पर,
सदा रंगता रहा रहस छवि--
इंगित पर जो खिंचकर!

यह भावी का वर्तमान रे
युग प्रभात सा प्रहसित,
रूढ़ अतीत के धूमों से जो
नव क्षितिजों में विकसित !

यदि भू के प्राणों का जीवन
करना हो संयोजित,
तो अंतरतम में प्रवेश कर
करो बाह्य पट विस्तृत !

वर्तमान से छिन्न तुम्हें जो
लगता रिक्त भविष्यत्—
वह नव मानव का मुख,
अंकित काल पटी पर अद्भुत !

नहीं भविष्यत् रे वह,
मानवता की आत्मा विकसित,
जड़ भू जीवन में, जन मन में
करना जिसे प्रतिष्ठित !

यदि यथार्थ की चकाचौंध से
मूढ़ दृष्टि अब निष्फल,—
डूबो गीतों में, जिनका
चेतना द्रवित अंतस्तल !

लहराता आनंद अमृत रे
इनमें शाश्वत उज्वल,
ये रेती की चमक न,
प्यासा रखता जिसका मृगजल !

यदि हासोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो अब मन,
गीतों के दर्पण में देखो,
अपना श्री-नव आनन !

नव जागरण

सुन पड़ता फिर स्वर्ण गुंजरण !

इंद्रिय कमल पुटों में निद्रित,
मुग्ध, विषय मधु रज में मज्जित,
जाग उठा लो, नव प्रभात में
मन मधुकर, स्वप्नों से उन्मन !

खुले दिशाओं के ज्योतिर्दल,
भू विकास का अरुणोज्वल पल,
मानव आत्मा से उठता है
विगत निशाओं का अवगुंठन !

रजत प्रसारों में उड़ नूतन
प्राण मुक्त करते आरोहण,
शुभ्र नील में बज उठता अब
अगणित पंखों का कल कूजन !

उतर रहीं ऊषाएँ निःस्वर
मधु पावक रस की सी निर्झर,
गाता हृदय शिराओं में वह
स्वर्ग रुधिर, भर नव सुख स्पंदन !

यह अपलक भू शोभा का क्षण
उर में प्रीति मधुरिमा के व्रण,
जीवन के जर्जर पंजर में
दौड़ रहा अमरों का यौवन!

नव मरंद रस गंध उच्छ्वसित
प्राणों के ज्वाला दल प्रहसित,
देवों का मधु संचय करने
उड़ता, ऊपर, मन नव चेतन!

जिज्ञासा

कौन स्रोत ये !

ये किन आकाशों में खोए
किन अवाक् शिखरों से झरते ?
किस प्रशांत समतल प्रदेश में
रजत फेन मुक्तारव भरते !

ये किन स्वच्छ अतलताओं की
मौन नीलिमाओं में बहते ?
किस सुख के स्पर्शों से, स्वर्णिम
हिलकोरों में कँपते रहते !

कौन स्रोत ये !

किरणों के वृंतों पर खिलते
भावों के सतरँग स्वप्नोत्पल,
मनोलहरियों पर बिंबित, कर
रक्त पीत सित नील ज्योति दल !

नामहीन सौरभ में मज्जित
हो उठता उच्छ्वसित दिगंचल.
रहस गुंजरण में लय होता
शब्दहीन तन्मय अंतस्तल !

कौन स्रोत ये !

श्रद्धा औ' विश्वास— रुपहले
राज मरालों के-से जोड़े
तिरते सात्विक उर सरसी में
शुभ्र सुनहली ग्रीवा मोड़े !

शोभा की स्वर्गिक उड़ान से
भर जाता सहसा अपलक मन,
बजते नव छंदों के नूपुर
अलिखित गीतों के प्रिय पद बन !

बह जाते सीमाओं के तट
हर्षों के ज्वारों में अविगत,
लहरा उठता अतल नील से
नाम रूप के ऊपर शाश्वत !

कौन स्रोत ये !

जन्म दिवस

(२० मई १६००)

आः, चौवन निदाघ अब बीते,
जीवन के कलशों-से रीते ?—
चौवन मधु निदाघ अब बीते !

गत युग के वैभव चिह्नों-से, मधु के अंतिम
ताम्र हरित कुछ पल्लव, कुछ कलि कोरक स्वर्णिम
जाड़े से ठिठुरे, डालों पर बिलमाए थे,
रजत कुहासे पट में लिपटे अलसाए थे;
धरती पर जब शिशु ने पहिले आँखें खोलीं !
(आँगन के तरु पर तब क्या गिरि कोयल बोली ?)

विजन पहाड़ी प्रांत, हिमालय का था अंचल,
स्नेह क्रोड़ शैशव का, गिरि परियों का प्रिय स्थल :
धूपछाँह का स्वप्न नीड़,—श्यामल, स्मृति कोमल,
वन फूलों का गंध दोल, ऋतु मारुत चंचल !

नव प्रभात बेला थी, नव जीवन अरुणोदय,
विगत शती थी भुक्तप्राय, युग संधि का समय !
ओस हरी ही थी, तृण तरु की पलकों पर जल,
मातृ चेतना शिशु को दे प्राणों का संबल
अंतर्हित जब हुई,—भाग्य छल कहिए विधि बल !!
जन्म मरण आए थे सँग-सँग बन हमजोली,
मृत्यु अंक में जीवन ने जब आँखें खोलीं !

आः, समदृष्टि प्रकृति ! विषएण आँगन में स्वर्गिक स्मिति भर
फूल उठे थे आड़ू, ललछौंहे मुकुलों में सुंदर !
सेबों की कलियाँ प्रभूत, रक्तिम छींटों से शोभित,
खिलीं मँझोले रजत फलों में करती थीं मन मोहित !
पइयों[1] की प्रसन्न पंखड़ियां उड़ती थीं पिछवारे,
महक रहे थे नीबू, कुसुमों में रजगंध सँवारे !
नारंगी, अखरोट, नाक के फूल, मंजरी, कलियां
बढ़ा रही थीं ऋतु शोभा, केले की फूली फलियाँ !
काफल[2] थे रँग रहे, फूल में थी फल लिए खुबानी,
लाल बुरूसों[3] के मधु छत्तों से थी भरी वनानी !

हँसती थीं घाटियां, हिसालू[4] खिले सुनहले त्तण में,
बेड़ू[5] थे बैंगनी, लसलसे, पके अधपके वन में !
लदे अमोए गुच्छों में थे जंगली मूँगी दाने,
टूट रहे थे तोते खटमिट्ठे वन-मेवे खाने !

देवदारु कुंकुम का स्वर्णिम टँगा सहन में था नभ;
सांसें पीती थीं चीड़ों की मर्मर, नीरुज सौरभ !
मूक नवागत का करती थी शैल प्रकृति अभिनंदन,—
वर्षों बाद किशोर हुआ इन दृश्यों के प्रति चेतन !

सोता था क्या भूँक रात भर झबरा कालू पाजी ?
मस्त भोटिया शेर, बाघ से ली थीं जिसने बाज़ी !

१ जंगली चेरी २ छोटा लाल फल ३ रोडोडंड्रम के फूल ४ छोटे पीले फल ५ पहाड़ी अंजीर ।

सी सी सीटी बजा, आ रहा होगा भाजी देने
मंगल बाबर्ची का नटखट लड़का पैसे लेने !
उमड़ चीटियों-से, किलबिल कर, माली घर निज डलियां
चुनते होंगे हरी चाय की बटी सुनहरी कलियां !

हाथ जोड़ कर, बकता होगा खड़ा मसख़रा बिस्ना,
"अब हजूर, पेंसन मिल जाए, और नहीं कुछ तिस्ना !
धौली के सींघों-से कंपते हाथ पैर कर लक़लक़,
पानी के वहंगे लाने में सांस फूल जाती थक !
जाड़े से हड्डी बजतीं,—सरकार, हुआ बूढ़ा तन,
मौना[1] के छत्ते करते फूटे कानों में भनभन !
अब मोती पर जीन कसेगी ? - देखें आप किसी छिन
कान खड़े कर, टाप उठाए, करता दिन भर हिनहिन !
आगे के सब दाँत निगल अब चुका साथ चारे के,
पीठ झुक गई, पेंसन के दिन हैं उस बेचारे के।"
हीं हीं हँस, जुट गया काम में होगा तुरत लगन से,
भृत्य पुरातन, शुभ दिन की कर मौन कामना मन से !

निश्चय ही, कटती होगी तब जौ गेहूँ की बाली,
कटि में खोंस दराती, सिर पर धर सोने की डाली,
जाती होगी खेतों में प्रातः मखमल की चोली
मार छींट लहंगे में फेंटा,—वह गाँव की भोली !

---

१ मधुमक्खी

ढोरों के सँग निकल छोकरे खुले हरे गोचर में
रोल मचाते होंगे, खेल कबड्डी हो-हो स्वर में!
उचक चौंक खरहे झाड़ी में छिपते होंगे डर से,
हिरन चौकड़ी मार, भागते होंगे चकित उधर से!

कंधे से टांगी उतार कर, हाथ कनपटी पर धर
गाता होगा गंवई छैला खड़ा किसी चोटी पर!
घास छीलती होगी हरी तलैटी में नथवाली
देख सुवा[1] को छाई होगी आँखों में हरियाली!
छेड़ी होगी मस्त तान स्वर मिला मुखर मर्मर से,
मधुर प्रतिध्वनि आई होगी घाटी के भीतर से!

"बिजली बसती घन में,
आग-लगा दी खिल बुरूस ने वन में, तूने तन में!

"मेंहदी पिसती सिल में,
तू न देख पाए, तेरी ही रंगत टूटे दिल में!

"मन उड़ता पाँखों में,
सुवा घूमता वन-वन, तू घूमा करती आँखों में!

"सांझ हुई आंगन में,
तुझे देख कैसे बतलाऊं क्या हो जाता मन में!

"बदली छाई दिन में,
नई उमर की बाढ़ नवेली उतर जायगी छिन में!"

१ तोता, प्रेमिका

मीठे स्वर में देती होगी प्यार भरी धनि गाली,—
"क्या खाकर मरभुखे, करेगा तू मेरी रखवाली!
सास सिंहिनी सी है मेरी, ससुर एक में सौ-से,
जेठ बैल-से हैं मतवाले, देवर मेरे गौ-से!
सैंया मेरे कामधेनु-से, मैं जाऊँ बलिहारी,
वे चंदन मैं गंध-छाँह, वे चंदा मैं उजियारी!
वे हिरना मैं हिरनी, पीते मिल झरने का पानी,
तू प्यासा तो खोज कहीं जलधार, मूढ़, बकध्यानी!
ननदी मेरी काली नागिन, जी हो उसे खिझा तू,
बीर मरद जो, बीन बजा कर पहिले उसे रिझा तू;—
और नहीं तो, क्या चुल्लू भर पानी तुझे नहीं है?"
"बहती गंगा छोड़ कहाँ जाऊँ धनि, क्या न सही है?"
गूँज रही होंगी, गिरि वन अंबर में दुहरी तानें,
और पास खिंच आए होंगे दो जन इसी बहाने!

हाँ, तब ऊषा स्वर्ग क्षितिज पर स्वर्णिम मंगल घट भर
उतरी थी, युग उदय शिखर पर माणिक सूर्य मुकुट धर!
पहिले से जग कर खग, ऊँचे गिरि वासों के कारण,
गाते थे नव स्वर लय गति में नवल जागरण चारण!
नील, प्रतीक्षा था नीरव,—अनुराग द्रवित थे लोचन,
गंध तुहिन से ग्रथित रेशमी पट सा मसृण समीरण!
रँग रँग के वन फूलों से गुंफित मखमल के शाद्वल
तल्प संजोए थे स्मित, शैशव के हित, क्रीड़ा कोमल!

देख रहा था खड़ा निकट ही हिमवत् नव जन्मोत्सव,
गौरव से उन्नत कर मस्तक, बरसा आशीर्वैभव!

अमरों का अधिवास, पुण्य शिखरों से अक्षय कल्पित,
सात्विक आत्मोल्लास, चेतना में एकांत समाधित !
स्वर्गिक गरिमा में उठकर, नैसर्गिक सुषमा में स्थित
स्फटिक शृंग निर्वाक् नीलिमा में थे स्वर्ण निमज्जित !
उतर रहा था हेम गौर चूड़ों पर मौन अतंद्रित
ज्योति काय चैतन्य लोक सा नव प्रभात दिक् प्रहसित !
फहराते थे आरोहों पर नीहारों के केतन,
शुभ्रारुण छायातप कंपित, रश्मि ज्वलित, नव चेतन !
अतल गहनताओं से जग उत्कर्षों में नभ चुंबित
आध्यात्मिक परिवेश शांत, लगता था विस्मय स्तंभित !

तभी अगोचर अंतरिक्ष में, अंतर्जग के भीतर
नए शिखर थे निखर रहे शत सूक्ष्म विभव के भास्वर !
जिन पर नूतन युग प्रभात था उदय हो रहा गोपन,
रजत नील स्वर्णारुण शृंगों पर भर स्वर्गिक प्लावन !
नयी शती थी जन्म ले रही काल दंष्ट्र में जीवित,
स्नेह मूर्ति सी विगत शती थी कृच्छ्र वेदना मूर्छित !
नव चेतन था अभिनव, मानस शव सा पुण्य पुरातन,
नाल मुकुल !—पर इनका स्मृति पावन संबंध सनातन !
था निमित्त शिशु, नव युग था अवतरित हो रहा निश्चय,
बहिरंतर का धूम चीर हँसता था नव स्वर्णोदय !

इसीलिए, संभव, हिमाद्रि का स्वर्गोन्मुख आरोहण
युग सनाभि शिशु के मन के हित रहा महत् आकर्षण !
इंद्रचाप के ज्योति सेतु पर नव स्वप्नों के पग धर
विचरा वह मोहित शृंगों पर शोभा तन्मय अंतर !

महिमान्वित कर मनः क्षितिज को, दृष्टि सरणि को विस्तृत,
दीपित करते थे शैशव पथ सौम्य शिखर दिक् शोभित !
मुग्ध प्रकृति छवि नव किशोर मानस में तिरती थी नित
स्वर्ग अप्सरी सी तुषार सरसी सुषमा में बिम्बित !

काँव-काँव कर आँगन में कौए गाते थे स्वागत,
गुह्य शक्तियाँ तव अलक्ष्य में निश्चय होंगी जाग्रत् !
अवचेतन निश्चेतन को होना था युग के मंथित,
मानस को उन्नीत, देह के जड़ अणुओं को ज्योतित !
चिर विभक्त को युक्त, रुद्ध को मुक्त, खंड को पूरित,
धरा विरोधों को होना था विश्व ऐक्य संयोजित !
कुत्सित को सुंदर, सुंदर को बनना था सुंदरतर,
शिव को शिवतर, लोक सत्य को मानव सत्य महत्तर !

दूर कहीं घिरते थे, संभव, धीरे, क्रांति बलाहक,
रक्तिम लपटों के पर्वत, भू के नव जीवन वाहक !
घुमड़ रही थी क्रुद्ध धरा उर में हुंकार भयानक,
ज्वालामुखी उगलने को था रुद्ध उदर का पावक !

झंझा का था जन्म दोल वह, ऋतु कुसुमों से गुंजित,
प्रलय सृजन थे साथ खेलते,—प्रभु की दया अपरिमित !
नहीं जानता, कब कृतार्थ होगा भू पर नव चेतन,
तम पर अमर प्रकाश, मृत्यु पर विजयी शाश्वत जीवन !
हिमवत् का विश्वास ले अटल, नव प्रभात की आशा,
नील मौन में खोए शृंगों की अनंत जिज्ञासा,—

प्रलय क्रोड़ में खींच प्रौढ़ शिशु अमृत प्राणप्रद श्वासा,
घृणा द्वेष में लिए हृदय में महत् प्रेम अभिलाषा !
खोज रहा वह युग विनाश में नव जीवन परिभाषा,
विश्व ह्रास में—नवल चेतना, सृजन प्रेरणा, भाषा !

हाँ, यौवन निदाघ अब बीते,
रिक्त अमृत-विष के मटकों-से मीठे तीते,—
यौवन मधु निदाघ अब बीते !

(मई १९५४)

गीत

रश्मि चरण धर आओ !
प्राणों के धन, अंधकार,
तप स्वर्ण शुभ्र मुसकाओ !

निःस्वर ताराओं के नूपुर,
रणित पवन वीणाओं के सुर,
अग्नि विहंगम, मनः क्षितिज में
ज्योति पंख फैलाओ !

अनाहूत हे, अविज्ञात हे,
लपटों में लिपटे प्रभात हे,
स्वर्ग दूत-से उतर, हृदय की
गोपन व्यथा मिटाओ !

पावक परिमल के वसंत हे,
मधु ज्वालाओं के दिगंत हे,
मानस के सूने पतझर को
शोभा में सुलगाओ !

किरणोज्वल कंटक किरीट धर
विचरो तम पंकिल भू मग पर,
प्राणों के निर्मम याचक हे,
जीवन रज लिपटाओ!

खोलो अंतर के तंद्रिल पट,
स्वर्ग सुरा से भरो रश्मि घट,
नव स्वर लय गति में जीवन को
स्वप्न मुखर कर जाओ!

आवाहन

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
आओ, नव क्षितिजों पर आओ!
स्वर्गिक शिखरों के प्रकाश में
भू के शिखरों को नहलाओ!

आत्म मुक्त स्वर्णिम उड़ान भर,
शून्य नील के कूल पार कर,
शिखरों से समतल पर उतरो,
आगे के अरुणोदय लाओ!

महत् स्फुरण का यह नीरव क्षण,
पौ फटने के पहले का तम,
दीपित कर निशिएं अतीत की
नव ज्वालाओं में लिपटाओ!

गीत अधजगे तरु नीड़ों में,
स्वप्न अधमुंदे उर पलकों में,
मौन प्रतीक्षा का अनंत यह,
वातायन से मुख दिखलाओ!

ओ नव युग की नव ऊषाओ,
जन मानस क्षितिजों पर आओ!

उच्च नभस्वत पथ की वासिनि,
तुहिन पंक्ति रजतोज्वल हासिनि,
धूलि धूसरित भू के मग में
विचरो, कंचन घट ढलकाओ !

ज्योतिर्मय नभ शतदल में जग,
शुभ्र पीत पंखड़ियों में हँस,
अमृत कोष भुवनों की सौरभ
जन की साँसों में भर जाओ !

शाश्वत ऊषाओं के क्रम में
नव चेतन केतन फहरा कर
तृण तरु पर, गिरि सरि सागर पर
रश्मि पंख शोभा बरसाओ !

अंध गुहाओं में प्रवेश कर
कुंठित सत्यों के सोए स्तर
प्रीति शिखाओं में प्रोज्वल कर
मनोभूमि पर उन्हें जगाओ !

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
नव विकास क्षितिजों पर आओ !

सप्त वर्ण स्मित अश्वों पर चढ़,
मरुतों के पथ पर सवेग बढ़,
ज्योति रश्मियाँ निज कर में धर
भू का रथ निर्बाध चलाओ !

वस्तु तमस को दिक् प्रहसित कर,
रुद्ध दिशाओं को विस्तृत कर,
आनेवाले सूर्योदय के
मुख से तेजः पटल हटाओ !

विगत नवागत ऊषाओं में
अंतःस्मित नव स्वर संगति भर,
ओ प्राचीन प्रभातों की श्री,
नये प्रभातों में मुसकाओ !

निज असीम आभा प्रसरित कर
भावी ऊषाओं के नभ में,
विगत अनागत के छोरों पर
रश्मि सेतु बन, उन्हें मिलाओ !

ओ नवयुग की नव ऊषाओ,
नव प्रकाश क्षितिजों पर आओ !
स्वर्गिक शिखरों के प्रवाह में
भू के शिखरों को नहलाओ !

स्वर्ण मरंदो से अयि विरचित,
सूक्ष्म रजत क्षौमों में भूषित,
शत सुरधनुओं से हो वेष्टित
जन युग का अभिवादन पाओ !

ओ नव युग की नव ऊषाओ
युग प्रभात क्षितिजों पर आओ !

गीत

प्राण, तुम्हारी तंद्रिल वीणा
फिर मधु पावक से हो झंकृत !

अंधकार के तार अगोचर
गोपन स्पर्शों से कँप थर थर,
भरें गहन के उर मादन स्वर
विधि निषेध वर्जन हों विस्मृत !

सुलगें लपटों सी झनकारें
मर्म वेदना भरी पुकारें,
जीवन की असफल मनुहारें
नव स्वर संगति में हों मुखरित !

गरज उठें मन में छाए घन,
घुमड़ उठे नभ का सूनापन,
उमड़ें सागर में नव प्लावन
जीवन सीमाएं कर मज्जित !

मलयज बने प्रभंजन क्षण में
काँपें छायाएं कानन में,
खिलें फूल कुंठित पाहन में
निर्मम उर हो प्रीति विद्रवित !

जागे आशा नव जीवन की
अग्नि शिखा अभिलाषा मन की,
विजय पराजय क्षण अनुक्षण की
जाग्रत् तारों में हो मूर्छित !

क्षितिज पल्लवित हों शत पतझर
भरें गहन विद्रोही मर्मर,
स्वप्न पग ध्वनित हों गत खंडहर
नव प्रभात शोभा से मंडित !

यह तामस प्रिय मानस वीणा
सात्विक पावक से कर क्रीड़ा,
छोड़े आदिम संशय व्रीड़ा
दिङ् मंडल हों मर्म गुंजरित !

स्मृति

वन फूलों की तरु डाली में
गाती अह, निर्दय गिरि कोयल,
काले कौओं के बीच पली,
मुंहजली, प्राण करती विह्वल !

कोकिल का ज्वाला का गायन,
गायन में मर्म व्यथा मादन,
उस मूक व्यथा में लिपटी स्मृति,
स्मृति पट में प्रीति कथा पावन !

वह प्रीति—तुम्हारी ही प्रिय निधि,
निधि, चिर शोभा की ! (जो अनंत
कलि कुसुमों के अंगों में खिल
बनती रहती जीवन वसंत !)

उस शोभा का स्वप्नों का तन,
(जिन स्वप्नों से विस्मित लोचन !
जो स्वप्न मूर्त हो सके नहीं,
भरते उर में स्वर्णिम गुंजन !)

उस तन की भाव द्रवित आकृति,--
(जो धूपछाँह पट पर अंकित!)
आकृति की खोई सी रेखा
लहरों में बेला सी मज्जित!

यौवन बेला वह, स्वप्न लिखी
छवि रेखाएं जिसमें ओझल,
तुम अन्तर्मुख शोभा धारा
बहती अब प्राणों में शीतल!

प्राणों की फूलों की डाली,
स्मृति की छाया मधु की कोयल,
यह गीति व्यथा, अंतर्मुख स्वर,
वह प्रीति कथा, धारा निश्छल!

अंतः क्षितिज

प्राणों की छाया में श्यामल—
कचनारी कलियों का कोमल
क्षितिज खिला अरुणोज्वल !

खुल पड़ते पंखड़ियों के दल
दीपक लौ-से कंप-कंप प्रतिपल,
सौरभ से उच्छ्वसित दिगंचल !

लाज लालिमा स्मित किसका मुख
उदित मौन, यह मन के सन्मुख,
स्मृतियों से पुलकित अंतस्तल !

स्वप्नों की शोभा से कल्पित,
स्वर्ग रश्मि से सद्यः दीपित
प्रीति मुकुल सा पावन, निश्छल !

हँसा लालसा जल में सरसिज,
सोने सा तप निखरा मनसिज,
उमगा आकाशों में परिमल !

सौम्य, चेतना का अरुणोदय !...
हृदय मधुरिमा रस में तन्मय,
सूक्ष्म शिराएं सुख से चंचल !

लोचन अपलक सुषमा में लय,
अंतस में मधु सागर अक्षय
ज्योति तरल लहराता निस्तल !

प्राणों की छाया में शीतल—
कांचनार कलियों का पाटल
क्षितिज खिला किरणोज्ज्वल !

ग्रात्म बोध

ग्राड़ू नीबू की डालों सी–
स्वर्ण शुभ्र कलियों में पुलकित,–
तुम्हें ग्रंक भरने को मेरी
बाँहें युग युग से लालायित !

ग्रो नित नई क्षितिज की शोभे,
पत्र हीन मैं पतझर का वन,–
शून्य नील की नीरवता को
प्राणों में बाँधे हूँ उन्मन !

मुझमें भी बहता वन शोणित
हरा भरा—मरकत सा विगलित,—
मूक वनस्पति जीवन मेरा
मलय स्पर्श पा होता मुकुलित !

वन का आदिम प्राणी तरु मैं
जिसने केवल बढ़ना जाना,—
यह संयोग कि खिले कुसुम कलि,
नीड़ों ने बरसाया गाना ?

माना, इन डालों में काँटे,
गहरे चिन्तन के जिनके व्रण,—
मर्म गूँज के बिना मधुप क्या
होता सुखी, चूम मधु के कण !

अकथित थी इच्छा,— सुमनों में
हँस, उड़ गई अमित सुगंध बन,
मूल रहे मिट्टी से लिपटे,
आए बहु हेमंत, ग्रीष्म, घन !

अब फिर से मधुऋतु आने को,—
पर, मैं जान गया हूँ, निश्चित
मैं ही स्वर्ग शिखाओं में जल
नए क्षितिज करता हूँ निर्मित !

यह मेरी ही अमृत चेतना,—
रिक्त पात्र बन जिसका पतझर
नई प्राप्ति के नव वसंत में
नव श्री शोभा से जाता भर !

मनसिज ?

तुम मन की आँखों के सम्मुख
प्राणों के याचक बन आते,
मधु मुकुलों का ले धनुष बाण
स्वर्णिम मनसिज-से मुसकाते !

तुम वेणु चाप में चढ़ा डोर
साँसों की, भावों से गुंजित,
स्वर साध, सुनहले तीर छोड़
मर्माहत करते, अपराजित !

साँसों से झर सौरभ मरंद
उर को मधु स्मृति में लिपटाते,
सुरधनुओं के रँग फूलों के
कोमल अंगों में ढल जाते !

स्वप्नों की पंखड़ियाँ अपलक
मुख सरसिज बन जातीं खिलकर,
अगजग की शोभा सुंदरता
सुख केन्द्रित हो उठती छबि पर !

मानस के निर्मम हाव भाव
स्वर संगति में बँधते नूतन,

गाते वंशी-से रोम रंध्र
पुलकों में कँप उठते तन मन !

बज उठती कटि मेखला दिशा
तृण तरु में भर नीरव मर्मर,
लहरा उठता सरि सागर में
रस में डूबा तन्मय अंबर !

आनंद स्रोत बाहर भीतर
झरने लगते, शत रश्मि द्रवित,
सीमाएं लय होतीं, घन के
पट खुलते, हँसता नील अमित !

चेतना बिन्दु-से स्थिर उज्वल
अंतर शतदल पर समासीन
तन मन प्राणों के जीवन को
तुम करते सुख में आत्मलीन !

बहतीं प्रकाश की धाराएं
जिनसे रवि शशि तारा दीपित,
मानव आत्मा के ज्योति बिन्दु,
जग छाया सा लगता प्रसरित !

चंद्र के प्रति

एहो शीतल पावक वाहक !
रजत करों के कनक पात्र में
अग्नि लिए तुम अंतर दाहक !

किन प्राणों के तप का पावक,
किस विरहानल का परिचायक ?
किस मनसिज का रहस कला धनु,
किस सम्मोहन के मधु सायक !

किस मानस का स्मृति स्वप्नोत्पल,
खिले चतुर्दिक् ज्योति प्रीति दल,
किस ममता का मधु मरंद, किस
सूक्ष्म गंध मद का उद्भावक !

किस असीम सुख का अखंड क्षण,
किस शाश्वत मुख का प्रिय दर्पण,
किस स्वर्गिक सुषमा से बिम्बित,
कौन अमर वे गुण के ग्राहक

प्राणों के स्वर्णिम पावक सर,
कँपता स्मृतियों का जल थर-थर,
सोए राजहंस स्वप्नों के
सतजल पुलिनों में सुख दायक !

सुलगी मधु ज्वाला अंतर में
फैली गिरि वन में, सागर में,
अंबर की छाया बीथी के
निःस्वर रहस व्यथा के गायक !

अकथनीय नीरव आकर्षण,—
सृजन हर्ष से हिल्लोलित मन;
जलधि फेन में अप्सरियों के
स्वप्न दीप मणि कक्ष विधायक

कब से प्रीति मुकुर मुख को तक
विरह विभोर, अतंद्रित, अपलक
चुगते प्राण चकोर अँगारे,
तुम कैसे जन के अभिभावक !

बाहर भीतर

यह छोटा सा घर का आँगन !
जहाँ राम की अद्भुत माया
कभी धूप है तो फिर छाया,—
भाव अभावों का जग उन्मन !

अपने ही सुख दुख से निर्मित
गृह कलहों वादों में कंपित,
क्षण आशा नैराश्य प्रतिफलित
चित्त वृत्तियों का लघु दर्पण !

यहाँ उदय होकर दिन ढलता,
जन्म मरण सँग जीवन पलता,
तुतलाता, घुटनों बल चलता
खेल कूद, भर हास कल रुदन !

सूरज, चाँद,—दूब पर हिमजल,
तितली, फूल, गूँज, रँग, परिमल,
चिड़ियों की उड़ती-परछाँई,—
आते जाते विधि-पाहुन बन !

डाली पर उड़ गाती कोयल,
झर पड़ते आशा के कोंपल,
ज्ञात नहीं, कब क्या हो जाए,
प्रलय सृजन करते युग नर्तन !

जीवन का चंचल यथार्थ छल,
भरता, रीता होता अंचल,
मधु पतझर खिलते कुम्हलाते
भोर साँझ बिलमाते कुछ क्षण!

इस आँगन के पार राजपथ
चलता सतत जगत जीवन रथ,
दिशि-दिशि का कलरव कोलाहल
उपजाता नित नव संवेदन!

दूर, मंजरित खुले क्षितिज पर
नील पंख फैलाए अंबर
उड़ता उड़ता उड़ता जाता
बिठा पीठ पर मानव का मन!

भू को अंधकार का है भय,—
शिखरों पर हँसता अरुणोदय,
युग स्वप्नों की चाप सुनहली,
भरती उर में अस्फुट स्पंदन!

ऊषाएं

किरणों के स्वर्णिम-रव निर्झर
नीरव उच्छ्रायों से झर झर
बहते माणिक स्तंभों-से गल !

मौन अवतरण में रे प्रतिक्षण
कँपते सुर वीणाओं के स्वन,
अकथित स्वर संगतियों में ढल !

बजतीं सुर वधुओं की पायल,
उड़तीं जल फुहार स्मृति कोमल,
स्पर्शों से उर को कर तन्मय !

सूक्ष्म मधुरिमा इनमें घुल कर
तन मन की तृष्णा लेती हर,
अवचनीय रस सी जल में लय !

शुभ्र चेतना ही निर्मलता,
अतल शांति ही शुचि शीतलता,
मुक्त आत्म सुख ही इनकी गति !

अमृत सत्य में मूल स्रोत रे,
अंतः शोभा ओत प्रोत रे,
प्रीति सृजन ही में इनकी रति !

नील मौन में लीन अगोचर
नीहारों के स्मित शिखरों पर
स्वर्गंगा-से ये चिर शोभित!

अंतर ही के रहस शिखर वह,
अंतर ही के रस निर्झर यह,
जिनसे नित ऊषाएं दीपित!

गीत

स्वप्नों के पथ से आओ!
मधु भृंगों का स्वर्ण गुंजरण
प्राणों में भर, गाओ!

अंतर का व्रण क्रंदन हो लय,
तुममें रुद्ध अहंता तन्मय,
मेघों के घन गुंठन से हँस
रश्मि तीर बरसाओ!

जगे हृदय में सोया मानव,
जगे पुरातन में खोया नव,
शत मरतों का विद्युत् दंशन
तन मन में भर जाओ!

हे अकूल, हे निस्तल, दुस्तर,
हे स्वर्णिम बाड़व के सागर,
नव ज्वालाओं की लहरों में
उर को अतल डुबाओ!

मधु सौरभ रँग पावक के घन,
गंध स्पर्श रस से अति चेतन,
शत सुरधनुओं में लिपटे हे,
बज्र सँदेश सुनाओ!

अतिमा

यह अतिमा,
तन से जा बाहर
जग जीवन की रज लिपटा कर,
उपचेतन के कर्दम में धँस
घायल खोहों में घुस हँस हँस,
अंधकार को छेड़ जगाती !

यह अतिमा,
संघर्ष निरत नित
सुख दुख विरत, शांत, आत्मस्थित,
नीचे ऊपर, बाहर भीतर
छा सर्वत्र, ध्येय पर तत्पर,
मौन सृजन इंगित से प्रेरित
जन भू जीवन करती विकसित,
अग जग से पर, प्रिय मद माती !

यह अतिमा,

मन से उठ ऊपर
पंख खोल शोभा छितिजों पर,
स्वर्ण नील आरोहों को तर
गंध शुभ्र रज साँसों में भर,
गीतों के निःस्वर झरनों में
स्वप्न द्रवित सुरधनु वर्णों में
अंतर शिखरों को नहलाती!

यह अतिमा,

प्राणों के रथ पर
मरकत रजत प्रसार पार कर,
भू विकास का अपनाकर मग
नव गति, स्वर संगति के धर पग,
निज पथ दर्शक को श्रद्धा नत
सहज समर्पित कर उर अभिमत,
भक्ति प्रीति युत शीश नवाती!

यह अतिमा!

प्रार्थना

आओ हे, समवेत प्रार्थना करें धरा जन,
सृजन कर्म से, रचना श्रम से,—जो चिर पावन
रज तन की प्रार्थना : बुद्धि से,—जो प्रकाशमय
मानस की प्रार्थना : प्रेम से,—जो निःसंशय
मौन हृदय प्रार्थना : समर्पण से,—जो तन्मय
आत्मा की प्रार्थना : शक्ति, इच्छा से दुर्जय,—
जो प्राणों की मुक्त प्रार्थना ! आओ, हे जन,
युक्त प्रार्थना करें, पूर्ण हो मानव जीवन।

मानव को समझो हे, देवों के आराधक,
मानव के भीतर ईश्वर ही अविरत साधक !
महत् जगत जीवन की इच्छा ही प्रभु का पथ,
स्वर्ण सृजन चक्रों पर नित बढ़ता प्रभु का रथ !
अणु उद्जन की प्रलयंकर छाया में प्रतिक्षण,
निर्भय, नव निर्माण करो हे जीवन चेतन

शांति और क्रांति

शांति चाहिए शांति! रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह : महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह : हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह :—आज मुख्यतः देही वह, क्षण—
मनोविलासी,—आत्मा बनना है कल उसको!

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया वह
बाहर के अग जग में, बाहर के जीवन में,—
जहाँ भयानक अंधकार छाया युगांत का!
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन्मृत, छाया सा—
गत संस्कारों से चालित, प्रेतों से पीड़ित!!

खाई खंदक में, खोहों में, बीहड़ मग में
भटक गए जन के पग संकट की रेती में!
दलदल में फँस गया मत्त भौतिक युग, गज सा,
अपनी ही गरिमा के दुःसह बोझ से दबा!
जीवन तृष्णा, चक्की के पाटों सी, उसके
घायल पैरों से है लिपट गई, बेड़ी बन!
धृष्ट, निरंकुश, उच्छृङ्खल नर, आज, शील के
स्वर्णांकुश के प्रति असहिष्णु, अहंता शासित!

सोच रहा मैं,—नहीं स्पष्टतः देख रहा मैं,
महत् युगांतर आज उपस्थित मनुज द्वार पर!—
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर!
बदल रहा, निःसंशय, मानव ईश्वर भी अब,—
युग युग से जो परिचालित करता आया नित
मानव जग को, लोक नियति को, जीवन मन को!
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, संप्रति,
घूम रहा युग परिवर्तन का चक्र अकुंठित!

आज घोर जन कोलाहल के भीतर भी मैं
सुनता हूँ स्वर शब्द हीन संगीत अतंद्रित,—
मन के श्रवणों में जो गूँजा करता अविरत!
इस अणु उद्जन के विनाश के दारुण युग में
सृजन निरत हैं सूक्ष्म सूक्ष्मतर अमर शक्तियां
मानव के अंतरतम में,—जिनका स्वप्नों का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर युग के यथार्थ को,
अकथित शोभा भुवनों में पल्लवित हो रहा
मानस की अपलक आँखों के सन्मुख प्रतिक्षण!
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण धर!

कवि कपोल कल्पना नहीं,—अनुभूत सत्य यह,—
घोर भ्रांतियों के युग का निर्भ्रांत सत्य यह,—
आरोहण कर रही मनुज चेतना निरंतर

शिखरों से नव शिखरों पर अब, उठती गिरती,
संघर्षण करती, कराहती,—चिर अपराजित !
इसीलिए, मैं शांति क्रांति, संहार सृजन को,
विजय पराजय, प्रेम घृणा, उत्थान पतन को,
आशा कुंठा को, युग के सुंदर कुरूप को
बाँहों में हूँ आज समेटे,—उन्हें परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मान कर,—युग विवर्त के
क्रंदन किलकारों में ध्यानावस्थित रह कर !

विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक,
धार्मिक, वैयक्तिक मानव ? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्ग हीन बन रही बाह्यतः,
बिखर रहे यदि विगत युगों के मनः संगठन,...
क्या आश्चर्य, बदलता यदि आमूल मनुज जग !

स्वयं, युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अंतश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नए मूल्यों में विकसित !
उन पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक संबंधों का
रूपांतर हो रहा आज,—आवर्त शिखर में
घूम, पुनः जो संयोजित हो रहे धरा पर !—
विगत निषेधों, रूढ़ि, वर्जनाओं को सहसा
छिन्न भिन्न कर अपने प्रलयंकर प्रवेग में,—
विस्तृत कर जीवन पथ, निःसृत प्राणों का रथ !...
नैतिक आध्यात्मिक अतीत संक्रमण कर रहा,—
निखर रहे आदर्श लोक, सौन्दर्य तत्व नव !

आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वर्ण रश्मियों से स्मित ऊषाओं के रथ पर,
तड़ित् स्फुरित लतिकाओं में लिपटे पर्वत सा,
अगणित सुर वीणाओं के झंकृत निर्झर सा,
उन्मद भृंगों से गुंजित नव कुसुमाकर सा!

झरते शत सीत्कार आज बाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक!
आत्मा के गोपनतम अंतर में प्रवेश कर
मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख!
आज नाश के कर गढ़ रहे नवल मानव को,
नव इंद्रिय वह, विकसित इंद्रिय, अति इंद्रिय अब!

बदल रहा अब मानव ईश्वर—बदल रहा अब
मानव अंतर, मानवता का रूपांतर कर!

सोनजुही

सोनजुही की बेल नवेली,
एक वनस्पति वर्ष, हर्ष से खेली, फूली, फैली,
सोनजुही की बेल नवेली!

आँगन के बाड़े पर चढ़ कर
दारु खंभ को गलबाँही भर,
कुहनी टेक कँगूरे पर
वह मुसकाती अलबेली!
सोनजुही की बेल छबीली!

दुबली पतली देह लतर, लोनी लंबाई,
—प्रेम डोर सी सहज सुहाई!
फूलों के गुच्छों-से उभरे अंगों की गोलाई,
—निखरे रंगों की गोराई—
शोभा की सारी सुघराई
जाने कब भुजगी ने पाई!

सौरभ के पलने में झूली,
मौन मधुरिमा में निज भूली,—
यह ममता की मधुर लता,
मन के आँगन में छाई!
सोनजुही की बेल लजीली,
पहिले अब मुसकाई!

एक टाँग पर उचक खड़ी हो
मुग्धा वय से अधिक बड़ी हो,—
पैर उठा, कृश पिंडुली पर धर,
घुटना मोड़, चित्र बन सुंदर,
पल्लव देही से मृदु मांसल,
खिसका धूपछाँह का आँचल,—

पंख सीप-से खोल पवन में
वन की हरी परी आँगन में
उठ अंगूठे के बल ऊपर
उड़ने को अब छूने अंबर!
सोनजुही की बेल हठीली
लटकी सधी अधर पर!

झालरदार ग़रारा पहने,
स्वर्णिम कलियों के सज गहने
बूँटे कढ़ी चूनरी फहरा,
शोभा की लहरी सी लहरा,—

तारों की सी छाँह साँवली,
सीधे पग धरती न बाँवली,—
कोमलता के भार से मरी,
अंग भंगिमा भरी, छरहरी!
उद्भिद जग की सी निर्झरिणी
हरित नीर, बहती सी टहनीं!

सोनजुही की बेल,
चौकड़ी भरती चंचल हिरनी!

आकांक्षा सी उर से लिपटी,
प्राणों के रज तम से चिपटी,
भू यौवन की सी अँगड़ाई,
मधु स्वप्नों की सी परछाँई,—

रीढ़ स्तंभ का ले अवलंबन
धरा चेतना करती रोहण,—
आः, विकास पथ में भू जीवन!
सोनजुही की बेल,
गंध बन उड़ी, भरा नभ का मन!

मूल स्थूल धरती के भीतर,
खींच अचेतन का तम बाहर,
वह अपने अंतर का प्रिय धन
शांति ध्वजा सा शुभ्र मणि सुमन
कंपित मृदुल हथेली पर धर,
उठा क्षीण भुजवृंत उच्चतर,--

अर्पित करती, लो, प्रकाश को
निज अधरों के अमृत हास को
प्राणों के स्वर्णिम हुलास को!

सोनजुही की बेल
समर्पित करती अन्तर्मुख विकास को,
उर सुवास को !

मानव मन कर रहा प्रतीक्षा
सोनजुही से ले नव दीक्षा,--
उसके उर के अंध राग से
प्राणों की हरिताभ आग से
फूटे चेतन शुभ्र शिखा,--

जो सके दिखा--
मानवता का पथ !
जीवन का रथ
—बढ़े !
प्रेम हो जग का इति अथ,
त्याग जन सारथि अभिमत !

सोनजुही दृष्टांत,—
मनुज संघर्षों से श्लथ,
रीढ़ कर्दम में लथपथ !!

आः धरती कितना देती है !

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और, फूल फल कर, मैं मोटा सेठ बनूँगा !

पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला !
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए !
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक,
बाल कल्पना के निज अपलक बिछा पाँवड़े !
मैं अबोध था, मैंने ग़लत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था !

अर्धशती हहराती निकल गई है तब से !
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाईं,
सी सी कर हेमंत कँपे, तरु झरे, खिले वन !
औ' जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिए,
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने, कौतूहल वश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिए मिट्टी के नीचे !
रज के अंचल में मणि माणिक बाँध दिए हों !

मैं फिर भूल गया इस छोटी सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु, एक दिन, जब मैं संध्या को आँगन में
टहल रहा था,—तब सहसा मैंने जो देखा,
उससे हर्ष विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से!

देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं!
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियां खोले थे वे नन्हीं, प्यारी,—
जो भी हो, वे हरे हरे उल्लास से भरे
पंख मार कर उड़ने को उत्सुक लगते थे,
डिम्ब तोड़ कर निकले चिड़ियों के बच्चों-से!

निर्निमेष, क्षण भर, मैं उनको रहा देखता,—
सहसा मुझे स्मरण हो आया,—कुछ दिन पहिले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में,
और उन्हीं से नन्हे पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से,
नन्हे नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है!

तब से उनको रहा देखता,—धीरे धीरे
अनगिनती पत्तों से लद, भर गईं झाड़ियाँ,
हरे भरे टँग गए कई मखमली चँदोवे!
बेलें फैल गईं बल खा, आँगन में लहरा,—

और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को!
मैं अवाक् रह गया वंश कैसे बढ़ता है!

छोटे, तारों-से छितरे, फूलों के छींटे
झागों-से लिपटे लहरी श्यामल लतरों पर
सुंदर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ से
चोटी के मोती-से, आँचल के बूटों-से!

ओह, समय पर उनमें कितनी फलियाँ टूटीं!
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,
पतली चौड़ी फलियाँ—उफ, उनकी क्या गिनती!
लंबी लंबी अंगुलियों सी, नन्ही नन्ही
तलवारों सी, पन्ने के प्यारे हारों सी,
झूठ न समझें, चंद्रकलाओं सी नित बढ़तीं,
सच्चे मोती की लड़ियों सी, ढेर ढेर खिल,
झुंड झुंड झिलमिल कर कचपचिया तारों सी!

आः, इतनी फलियाँ टूटीं, जाड़ों भर खाईं,
सुबह शाम घर घर में पकीं, पड़ोस पास के
जाने अनजाने सब लोगों में बँटवाईं,
बंधु बांधवों, मित्रों, अभ्यागत, मँगतों ने
जी भर भर दिन रात मुहल्ले भर ने खाईं!
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ!

यह धरती कितना देती है! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को!
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्व को!
बचपन में, छिः, स्वार्थ लोभ वश पैसे बोकर!

रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूं!
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं,
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की—जीवन श्री में हँसें दिशाएँ!
हम जैसा बोएंगे वैसा ही पाएंगे!

कौए, बतखें, मेंढक

कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोंचें,
सारे कौए, प्यारे कौए,
कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोंचें !

कौन सँदेसा लाए घर घर,
कौन सगुन स्वर, कौन अतिथि वर,
काले पंखों के झुटपुट से
मन के रीते आँगन को भर !

कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोंचें,
प्यारे कौए, न्यारे कौए,
कहाँ मढ़ा लाए सोने से अपनी चोंचें !
पौ फट गई ! सुनहला युग क्षण,—आओ, सोचें !

कहाँ जड़ा लाईं हीरों से अपनी पाँखें,
गोरी बतखें, भूरी बतखें,
कहाँ जड़ा लाईं हीरों से अपनी पाँखें !

कौन झील, कैसा चेतन जल,
जहाँ खिला वह स्वर्ण कमल दल,
पाप पंक में रहने वाली
कहाँ पा गई पुण्य तेज बल !

कहाँ जड़ा लाईं हीरों से अपनी पाँखें,
गोरी भोरी, भूरी बतखें,
कहाँ जड़ा लाईं हीरों से अपनी पाँखें!
नई दृष्टि यह! पाप पुण्य फल?—खोलो आँखें!

कहाँ गढ़ा लाए कंठों में वीणा के स्वर,
ये पीले मटमैले मेंढक,
कहाँ गढ़ा लाए कंठों में वीणा के स्वर?

भू का उपचेतन आवाहन
उत्कंठित करता रह रह मन,
कौन साध, किन श्रवणों के हित
करती क्या गोपन संभाषण?

कहाँ गढ़ा लाए कंठों में वीणा के स्वर,
पीले, हरे, मटैले मेंढक,
कहाँ गढ़ा लाए कंठों में वीणा के स्वर,—
प्रेम तत्व यह! सृजनातुर अगजग का अंतर!

प्रकाश पतिंगे छिपकलियाँ

वह प्रकाश, वे मुग्ध पतिंगे,
ये भूखी, लोभी छिपकलियाँ,
प्रीति शिखा, उत्सर्ग मौन,
स्वार्थों की अंधी चलती गलियाँ!

वह आकर्षण, वे मिलनातुर,
ये चुपके छिप घात लगातीं,
आत्मोज्वल वह, विरह दग्ध वे,
ये ललचा, धीरे रिरियातीं!

ऊर्ध्व प्राण वह, चपल पंख वे,
रेंग पेट के बल ये चलतीं,—
इनके पर जमते तो क्या ये
आत्म त्याग के लिए मचलतीं?

छिः, फँलाग भर ये, निरीह
लघु शलभों को खाते न अघातीं,
नोंच सुनहले पंख निगलतीं,—
दीपक लौ पर क्या बलि जातीं?

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर,

महत् कर्म के लिए चाहिए
महत् प्रेरणा बल भी भीतर!

पर, प्रकाश, प्रेमी पतंग या
छिपकलियाँ केवल प्रतीक भर,
ये प्रवृत्तियाँ भू मानव की,
इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर!

ये आत्मा, मन, देह रूप हैं,
साथ साथ जो जग में रहते,
शिखा आत्म स्थित, ज्योति स्पर्श हित
अंध शलभ तपते, दुख सहते!

पर, प्रकाश से दूर, विरत,
छिपकली साधती कार्य स्वार्थ रत,
ऊपर लटक, सरकती औंधी,
कठिन साधना उसकी अविरत!

उदर देह को भरना, जिससे
मन पंखों पर उड़, उठ पाए,
आत्म लीन रहकर प्रकाश को
मार्ग सुझाना, मन खिंच आए!

तुच्छ सरट से उच्च ज्योति तक
एक सृष्टि सोपान निरंतर,
जटिल जगत, गति गूढ़, मुक्त चिति,
तीनों सत्य,—व्याप्त जगदीश्वर!

आत्म दया

तुम मनुष्य की सीमाएँ क्या नहीं मानते ?
क्षमा नहीं कर सकते रज की दुर्बलताएँ ?
राग द्वेष में जलता नर नित, नहीं जानते ?
मन ही मन घुँटता रहता, निज असफलताएँ
किसे बताए ? कितने हैं ऐसे सहृदय जन,
जो मनुष्य को प्यार करें, उसका हित चाहें ?
दुर्लभ है जग में सच्चे मन का संवेदन,
जो पर दुःख समेटें, कहाँ सुलभ वे बाँहें !

तुम तटस्थ रहते जग जीवन के सुख दुख से
औ' असंग ईश्वर का मन में करते पूजन,—
तुम समदृष्टि ! कहूँ भी क्या तुमसे, किस मुख से,
मैं सामाजिक जीव, ज्ञात मुझको मानव मन,
दुर्बलताओं से जो लड़ता रहता प्रतिक्षण !
क्षमा नहीं, मैं उसे प्यार करता इस कारण !

केंचुल

केंचुल हैं ये, कोरे केंचुल,
फिर भी मन इनसे भय खाता!
दुःस्वप्नों की छाया स्मृतियाँ,—
शेष न अब साँसों से नाता!

कभी खँडहरों में, डगरों में
मिल जाते ये धूलि धूसरित,
चिकने, चितकबरे, चमकीले,
टूटे फूटे, कुंठित लंठित!

मन के खँडहर, युग की डगरें,—
ये हिलडुल जग को भरमाते,
प्राण वायु के झोंके खाकर,
मर-मर कर क्षण भर जी जाते!

अब न क्रुद्ध फुफकार, जिह्म गति,
गरल दंष्ट्र, उद्धत फन नर्तन,
रहीं न दुहरी जीभें,—संभव
था क्या जीते जी परिवर्तन!

रस्सी राख हुई कब की जल,
गई न मन की रीती ऐंठन,
रूढ़ि रीति मर्यादाओं के
मिटते सहज न भावुक बंधन!

काल सर्प कब इन्हें झाड़ कर
सरक गया, बढ़ चुपके आगे,
चरण हीन स्मृति चिह्न छोड़ निज,
ये भू-क्षत-से पड़े अभागे!

वह सहस्र फन खोल छत्रवत्
करता नव अंबर पथ निर्मित,
स्वप्ननिद्र प्रभविष्णु विष्णु को
अंक लिए, नव सृजन पद्म स्मित!

वह अशेष जो शेष,—पूर्ण से
मात्र पूर्ण ही होता सर्जित,
वह समग्र अविभक्त नित्य, जो
भूत भविष्यत् वर्तमान नित!

आः, वह मन के गलियारे को
लाँघ, ले चुका मुक्त राज पथ,
जीव नियति, कर्मों के बंधन
रोक न पाए काल चक्र रथ!

वह अतिक्रम कर चुका युगों की
मानस केंचुल को,—अनंत गति,—
तपःक्षीण, साधना मुक्त यह
भुक्त वासनाओं की परिणति !

ये मृत सिद्धांतों के केंचुल,
तर्कों वादों में लिपटाए,
ममता तृष्णाओं के वेष्टन,
ओने कोने में बिलमाए !

ये छूँछे केंचुल, जड़ केंचुल,
दृष्टि भयावह, पर जीवन्मृत,—
कौन सत्य वह ? रीढ़ हीन जो
बाह्य तथ्य को रखता जीवित !!

अंतर्मानस

चीर बुद्धि के फेन,
विचारों के बुद्बुद,—
जाने कब कूद पड़ा आकुल मन
नील झील के जल में।

लहरों पर लहरें रहीं उमड़
स्वर्णिम आवर्तों में घिर घिर,
मन डूब रहा अविदित अकूल
शुभ्रारुण अंतस्तल में!
जाने कब कूद पड़ा प्यासा मन
निस्तल नीले जल में!

आः, यहाँ हो रहा अरुणोदय
अंतर के निःस्वर शिखरों पर,
मन खोल ज्योति चेतना पंख
खो गया, रह गया केवल मैं!

क्या देख रहा मैं इस प्रकाश में?
शब्दों भावों से अतीत
कर रहा पूर्ण को व्यक्त पूर्ण
नव स्वर संगति के शतदल में!

खिल रहीं विभक्त पँखड़ियाँ मिल,—
सुंदर शिव सत्य समग्र रूप
करते समग्र की सृष्टि,
सँजो
भव नाम रूप दिशि पल में !

जाने कब कूद पड़ा तृषार्त मन
सिन्धु हरित जल तल में !

स्वर्ण मृग

सोने का था हिरन सलोना,
तड़ित् लिखित सी थी चल चितवन,
पन्ने मूँगे की कृश टाँगें,
रत्नों के खुर, भू के भूषण !

चमक, चौकड़ी भरता था वह
हीरे मोती बिखरा भू पर,
चाँदी के धब्बों का था तन,
मणि कनियों के सींघ मनोहर !

चर जाता था वह भू मानस,
छीज छीज जाता था जीवन,
ग्रीवा भंगी के भँवरों में
भटक तरीं-से जाते लोचन !

पास फटक वह, दूर छिटक वह
प्राणों को करता था मोहित,
धूपछाँह का भावों का वन
उस माया मृग से था शोभित !

सोने का था वहाँ अहेरी,
सोने के थे चाप, तूण, शर,

मार गिराया उसने मृग को
अंधकार जग के वन का हर !

उछल गगन में, गिरा भूमि पर
वह सोने का पशु मर्माहत,
युग कर्दम का ढूह ढह गया,
ढेर हुआ पापों का पर्वत !

पंचवटी लुट गई हृदय की,
पंचवटी जो तब से सूनी,
रावण हो मर गया भले ही,
पंचवटी पर श्री हत दूनी !

तृप्त हुई मन की न कामना,
नयन लुभाता सोने का मृग,
शेष अभी जीवन मरीचिका,
तृषित रूप रस के माते दृग !

हुआ अगोचर सोने का मृग,
वह छलांग भरता अंतर में,
क्षण भर मन धरती पर रहता,
क्षण भर में उड़ता अंबर में !

सोने का आ रहा अहेरी,
बाल सूर्य सा जो नव सुंदर
रश्मि जाल ले कर में स्वर्णिम,
अधरों पर मुरली धर निःस्वर !

लक्ष्य न अब मानव पशु का वध,
उसका संरक्षण ही अभिमत,
नए कल्प का त्रेता युग यह,
नव जीवन निर्माण सृजन रत !

सम्मोहित करता वन पशु को
युग का स्वर्गिक वधिक अहिंसक,
भूल गया चौकड़ी चकित शिशु,
वंशी स्वर पर मुग्ध, एकटक !

लो, किरणों के स्वर्ण जाल में
जाने कब फँस गया वन्यचर,
अंधकार के गुह्य शैल से
लिपट गई हो ऊषा भास्वर !

जाने कब बाहर कुदान भर
ज्योति बन गई थी अँधियाली,
कण तृण से इंद्रिय मानस बन
पूर्व चेतना उसने पाली

पशु के चरणों में जीवन गति,
वंशी उसे सुझाती नव पथ,
मार प्रेरणा की छलाँग नव
हाँक रही मोहक ध्वनि भू रथ !

मृग की अंगभंगि की शोभा
शत भावों की श्री में वितरित,
चितवन की चंचल जिज्ञासा
बहिरंतर जग करती दीपित !

अब संस्कृत होगा जीवन पशु
अंतर की स्वर लय में पोषित,
पंचवटी की अमृत चेतना
धरा स्वर्ग में होगी विकसित

क्योंकि वही है सोने का मृग,
वही अहेरी भी अपराजित,
वही सुनहला वंशी का स्वर,
द्रष्टा, वही विषय पर मोहित

प्राणों की सरसी

यह प्राणों की चंचल सरसी!

रवि शशि ताराओं से गुंफित,
स्वर्गंगा सी स्वप्न प्रज्वलित,
बहती भीतर ही भीतर नित
स्वर्णिम पावक के निर्झर सी!

मज्जन करते इसमें सुर गण
पूर्ण काम होते ऋषि मुनि जन,
अप्सरियाँ पातीं नव यौवन,
संजीवनी सुधा सीकर सी!

तीरों में स्मृति पावन तीरथ,
निस्तल जल में मग्न मनोरथ,
इसका कहीं नहीं रे इति अथ,
त्रिभुवन की ज्वाला परिकर सी!

स्वप्नों के तट सतरँग कुसुमित,
कुसुमों पर मधु भृंग गुंजरित,
स्वर्ण गुंजरण सुन उर मोहित,
शत सुर वीणाओं के स्वर सी!

लहरों में नव लोक उछलते,
बुल्लों में लय कल्प बिछलते,
अंतर में भू स्वर्ग मचलते,
ज्वलित रत्नछाया आकर सी।

आओ, तैरो, ले शत आशा,
डूबो हे, पूरो अभिलाषा,
पीओ जीवन मादन श्वासा,
यह अमरों के अक्षय वर सी।

गीत

ए हो, रस के सागर!
भर देते तुम मोह रिक्त कर
प्राणों की मधु गागर!

बढ़ती पीकर मर्म पिपासा
जी उठती जीवन की आशा,
अवगाहन करते तुम में नित
नव यौवन हित निर्जर!

तिक्त मधुर, अभिशप्त वरद बन,
तप्त जलधि हिम शीत जलद बन,
बरस बरस पड़ता रोओं से
रस फुहार बन निःस्वर!

विस्मृत वस्तु विभेद, आत्म पर,
भाव मुग्ध, तन्मय सचराचर,
बज उठती स्वर्णिम नूपुर ध्वनि
लहरों में नर्तन भर

शत वसंत खिलते स्मृति मादन
कोटि भृंग भरते मधु गुंजन,
रूप रंग सौरभ कलरव में
रस मज्जित कर अंतर!

किस निरभ्र नभ का यह आँगन
पंख खोल उड़ता पागल मन,
झरते निभृत उषाओं के शत
स्वप्न गुंजरित निर्झर!

हृदय डुबाओ भले अतल में,
प्राण उड़ाओ या परिमल में,
यह सागर का ज्वार रहेगा
नहीं तीर से बँध कर!

दिव्य करुणा

तुम प्रथम उषा बन कर आई
स्वप्नों की द्वाभा में वेष्टित,
अधखुले स्वर्ग वातायन से
चेतना क्षितिज को कर रंजित!

अस्पृश्य, अदृश्य, विभा व्यापक,—
आनन अवगुंठन में हँस कर
तुम दीप्त कर गई अगम, मौन
आरोहों के निरवधि अंतर!

निष्क्रिय उपचेतन के तम में
जाग्रत कर अविदित हृत् स्पंदन
तुम मुक्त कर गई शाश्वत पथ,
आलोक प्रतीक्षा की सी क्षण!

भू के धूमावृत शिखरों पर
हो स्वर्ण चेतना रश्मि द्रवित
तुम उच्च वायुओं के प्रांगण
कर गई गंध मधु से गुंजित!

दिन बाट जोहता रहा अथक,
  क्षर वस्तु उभर आईं ऊपर,
इच्छाओं के कोलाहल में
  कब डूब गया अंतर का स्वर।

अज्ञान बन गया वस्तु बोध,
  इंद्रियाँ चेतना की वाहक,
जीवन ममता की लगी पैंठ,
  आए बहु प्राणों के ग्राहक।

जाने कब संध्या की विरक्त
  छाया घिर आई अंबर में,
मेघों के कंचन कलश सौध
  सब म्लान पड़ गए क्षण भर में।

मैंने सोचा, जीवन लहरों
  अंतः शिखरों से उदासीन
अंतिम आशा की स्वर्ण रेख
  होगई सदा को अब विलीन।

पर, चंद्र कला बन तुम अमंद
  निखरीं प्राणों में नव मूर्तित,
घन अंधकार में जगती के
  भू जीवन का पथ कर ज्योतित।

मानस की अंध गुहाओं को
स्वर्णिम स्पर्शों से कर विगलित
जीवन के फेनिल ज्वारों पर
तुम तिरतीं ज्योति तरी सी स्मित !

अब अश्रु धौत इच्छाओं के
मेघों की वेणी में गुँथकर
स्वर्गिक आभा के सूक्ष्म विभव
सतरँग सुरधनु मन लेते हर।

नव जीवन के अरुणोदय में
अंतर्नभ में हो सहज उदित
तुम महारात्रि के संकट में
अक्षय प्रकाश करतीं वितरित !

ध्यान भूमि

आओ हे, सब ध्यान मौन, एकाग्र प्राण मन,
जीवन का अंतरतम सत्य करें उद्घाटन!
पलक मूँद, अंतः स्थित, खोलें मन के लोचन,
घटवासी को करें पूर्ण हम आत्म समर्पण!

लो, सुन पड़ता सूक्ष्म स्वर्ण भृंगों का गुंजन,
मन, धीरे, श्रद्धा पथ से करता आरोहण!
देखो, छँटता घने कुहासे का छाया-घन
पलता जिसमें हास अश्रु स्मित जग का जीवन,—
जिसकी चपल भृकुटि पर इंद्रधनुष सा प्रतिक्षण
हँसता मानव आशाऽकांक्षा का सम्मोहन!

ओझल होता अब वह बादल रश्मि विद्रवित
गर्जन संघर्षण मय, तृष्णा ताड़ित् प्रकंपित!
नए रुपहले क्षितिज निखरते मन के भीतर
आभा के रस स्रोत फूटते, पुलकित अंतर!
जग के तम के साथ हुआ मैं का भ्रम भी लय
लो, अवाक् आरोहों पर उड़ता मन निर्भय!
जहां शुभ्र सच्चिदानंद के शिखर अतंद्रित
निज असीम शाश्वत शोभा में निःस्वर मज्जित!
मानव मन की अंतिम गति, आत्मा की परिणति,
दिव्य स्पर्श पा निर्मल हो उठती पंकिल मति!

आः, वह ऊपर छाया स्वर्णिम ज्वाला का घन
दीप्त प्रेरणा ताड़ितों में लिपटा अति चेतन !
बरस रहे शत सृजन प्रलय, शत देश काल क्षण
श्री शोभा आनंद मधुरिमा का भर प्लावन !
अमृत बिन्दुओं-से झरते स्मित ज्योति प्रीति कण
अमरों के सुख वैभव में उर करता मज्जन !
भार हीन अक्षय प्रकाश से पीड़ित अंतर
रहस भावना के स्वर्गों में उठता ऊपर !

अंतर्मन का शांत व्योम रे यह निःसंशय
ऊर्ध्व प्रसारों में खो जाए चित्त न तन्मय !
आओ, इस स्वर्गिक बाड़व में अवगाहन कर
लौट चलें पावक पराग मधु का नव तन धर !
नव प्रकाश के बीज करें जन भू पर रोपण
शोभा महिमा से कृतार्थ हो मानव जीवन !

गीत

शिखरों से उतरो !
युग प्रभात के मधु प्रांगण में
स्वर्ग किरण विचरो !

मुक्त पंख विहगों के गायन
नभ पथ में करते अभिवादन,
अंबर से, गिरि तरु शिखरों से
तृण कण पर बिखरो !

स्वर्णिम गुंठन धर स्मित मुख पर
कनक चरण लहरों पर निःस्वर,
धरा रेणु के पहन वसन
शत रंजित हो निखरो !

कब से इंद्रिय कमल निमीलित,
भाव भृंग मँडराते कुंठित !
पैठ अचेतन प्राण गुहा में
तंद्रिल तमस हरो !

ज्योति तिमिर का मधुर मिलन क्षण
स्वप्नों का छाया सम्मोहन,
लज्जारुण आनन से उर में
नव अनुराग भरो!

नव आशाऽकांक्षा का शोणित
हृदय शिराओं में कर स्पंदित,
नव प्रभात की भैरवि, नूपुर
झंकृत चरण धरो!

प्राणों के पावक की प्रतिमे,
जीवन संवेगों की अतिमे,
नव शोभा लपटों में मन को
कंचन द्रवित करो!

नव चैतन्य

नव मानवता के प्रकाश,
नव भू जीवन के ईश्वर,
सूक्ष्म दिगंतों के प्रभात,
मनसिज-से स्वर्णिम सुंदर!

अंतर्मुख आकर्षण, स्वर्गिक
प्रीति मधुरिमा के वर,
नव चेतन मानस, रस इंद्रिय,
नव रहस्य सुख निर्झर!

प्राणों के कुसुमायुध में धर
रहस चेतना के शर
रुद्ध भावना ग्रंथि बेधते
तुम अवचेतन तम हर!

स्वर्ग रुधिर के पावक से कर
हृदय शिराएं झंकृत
श्री सुषमा आनंद ज्योति में
अंतर करते मज्जित!

खुलते शोभा अंतरिक्ष
मन के भुवनों के प्रतिक्षण,
स्वर्ण प्रसारों में दिङ् मुकुलित
हो उठता भू जीवन !

हँसतीं मुक्त दिशाएँ, किरणें
खोल धरा तम गुंठन,
विचरण करतीं मनोभूमि के
आरोहों पर चेतन !

तुम स्वर्णिम ज्वाला उडेलते
घट घट से स्मृति मादन,
रोम कूप पी-पी थक जाते,
भरते नव रस प्लावन !

अतिक्रम कर मानस के तट
मज्जित कर जीवन वर्जन,
लहरा उठता अंतस्तल से,
मुक्त भागवत यौवन !

स्वप्नों का धर धनुष बाण
उर में भर गहन सृजन व्रण,
सुख मूर्छित कर लिपटाते तुम
प्रीत ज्वाल में तन मन !

विषय कर्म रत इंद्रिय,
समरस भाव न बनते बंधन,
देह प्राण मन में बसते तुम
देवों से अति चेतन !

ओ मधु पतझर सृजन प्रलय के
पथ के पांथ विमोहन,
शांति क्रांति के स्वर्ग दूत,
विहँसो क्षितिजों में नूतन !

झंझा में भर पैंग, अग्निमुख
शृंगों पर कर रोहण,
विद्युत इंद्रधनुष में वेष्टित,
बरसो नव जीवन घन !

प्राणों की द्वाभा

घिरा रुपहला अंधकार !
यह विमूढ़ तम नहीं, गूढ़तम
प्राणों की गुंजार !

संध्या के झुटपुट से निःस्वर
मधु स्मृतियों के मुखर चरण धर
जग उठता मानस में सोया
स्वप्नों का संसार !

कितने सुर वीणाओं के स्वर
कँप उठते गोपन में थर थर,
अतल नील जल; तिरता शशि मुख,
उठते प्राण पुकार !

इस तम के पट में अंतर्हित
कितने अंतस के युग विस्मृत,
सुलग रहे तारा पथ में शत
भस्मावृत अंगार !

निखर रहे स्मृति शिखर तिरोहित
ज्वलित रश्मि रेखाओं से स्मित,
रजत हरित तम के सागर में
जगते स्वर्णिम ज्वार !

मैं एकाकी दीप जला कर
खड़ा मौन अभिवादन पथ पर,
तुम आते जाते हो, अपलक
खुले प्रतीक्षा द्वार !

बजते पावक के मधु नूपुर
स्वप्निल लपटों में लिपटा उर,—
प्राणों की नीरव द्वाभा में
करते तुम अभिसार !

सृजन वह्नि

एक आग है, हाँ, निःसंशय एक आग है !
राग विराग रहित, फिर भी यह एक राग है !

दग्ध नहीं करती यह मन को, भस्म न तन को,
उज्वल, निर्मल, पावन करती यह तन मन को !
रूप हीन यह, गंध वर्ण ध्वनि स्पर्श हीन यह,
जल जल नित शीतल करती रह आत्मलीन यह !

भौतिक आग नहीं यह, कायिक आग नहीं यह,
प्राणिक आग नहीं, न मानसिक आग सही यह !
आत्मिक आग ?—नहीं, पर फिर भी एक आग यह,
विकसित जीवन शतदल की अक्षय पराग यह !

पालन करती अगजग का, पोषण जीवन का,
सृजनशील यह, सर्जन करती शाश्वत क्षण का !
तन में मन में बहती यह स्वर्गिक निर्झरिणी,
लपटों के सागर में तिरती स्वर्णिम तरणी !

जाग्रत करती मन को, दीपित करती तम को,
मृत्यु शून्य में सक्रिय रखती जीवन क्रम को !
निकट आग के यह, दिग् दाहक आग नहीं यह,
निकट राग के यह, श्रुति ग्राहक राग नहीं यह !

स्वर्णिम पावक

जीवन के स्वर्णिम पावक कण !
आज रुपहली ज्वालाओं में
मधु पल्लवित दिशा त्तण !

शत गंधों में, शत वर्णों में,
नव कलि कुसुमों में, पर्णों में
बरस रहा शत सुरधनुओं का,
रश्मि हास सम्मोहन !

दीपक लौ-से कँप कँप प्रतिपल
मर्मर भरते नव प्रवाल दल,
मुखर पंख फूलों के गायक
भृंग गूँजते उन्मन !

लपटों में लिपटे पलाश वन,
मंजरियों में गुँथे स्वर्ण कण,
हिम पावक, विष सुधा घोल पिक
करते आकुल कूजन !

देह प्राण मन की चिनगारी
सुलग बनीं सतरँग फुलवारी,
अपराजित, पतझारों में नित
करते तुम मधु वर्षण !

राग द्वेष आतप में तप कर
निखर धुंध घन से उज्वलतर,
लांछन हिम, जनरव झंझा में
करते कुसुमित सर्जन !

ओ प्राणों के पावक के कण,
भू जीवन मन से अतिचेतन,
तुम अभाव की छाया में हँस
लाते लोक प्रवर्तन !

घिरें भले ही प्रलय वलाहक,
गरजें धूमिल क्षितिज भयानक,
अप्रतिहत रह, तुम मधु मुकुलित
करते नव मानवपन !

जीवन प्रवाह

(अ)

यह सरिता का बहता अंचल,
इसमें केवल फेन ग्रथित जल!

सीपी सा प्रसार मुक्ता स्मित,—
तट असीम में मौन निमज्जित,
नालोज्वल निःशब्द शांति सा
उर में सूक्ष्माकाश प्रतिफलित!

शत छाया-आभाओं के जग
वर्णों की मैत्री में वितरित,
इच्छा की लहरें,—तटस्थ उर
शाश्वत गति का साक्षी निश्चित!

यह सरिता का गाता अंचल,
इसमें केवल वाष्प अश्रु जल!

आदि न मिलता, अंत न मिलता,
मध्य स्वप्न सा लगता मोहित,
शशि की रजत तरी अप्सरियाँ
खेतीं अंतर पथ में दीपित!

यह सरिता का कंपित अंचल,
साँस ले रहा जीवन प्रतिपल!

(ब)

यह मानवता का जग मांसल,
केवल छायाऽकृतियों का छल ?

रुचि स्वभाव वैचित्र्य भरा मन
अगणित संस्कारों से निर्मित,
उपचेतन की गूढ़ शिराएं
युग युग के शोणित से झंकृत !

कोटि सभ्यताएं, संस्कृतिएं
क्षुब्ध हृदय सागर में मंथित,
क्रम विकास में होती रहतीं
जो परिवर्तित, पुनरुज्जीवित !

यह मानवता का जग मांसल,
जन्म मृत्यु ही का क्रीड़ास्थल ?

अतिक्रम कर इतिहासों के तट
आत्मा करती रहती प्लावित,
गुह्य अंधतम प्राण गुहाएं
हो उठतीं स्वर्गिक प्रकाश स्मित !

यह मानवता का जग मांसल,—
चिर विकास पथ में भू मंगल !

विज्ञापन

छंद बंध खुल गए,
गद्य क्या बनीं स्वरों की पाँतें ?
सोना पिघल कभी क्या
पानी बनता ? कैसी बातें !

गीत गल गया सही,
मधुर झंकार नहीं पर खोई,
सूक्ष्म भाव के पंख खोल
अब मन में गंध समोई !

तुक ? शुक मुक्त हुआ
स्वर की रट के पिंजर से सहसा,
मन की डाल डाल पर गाता
वह किंशुक सा मुँह बाऽ !

बस रचना अब शेष,—
सृजन उन्मेष काव्य बन जाता,
सातों रँग घुल गए,
किरण का शुभ्र हास मन भाता !

इंद्रधनुष? क्या इंद्रधनुष
स्थायी रहता अंबर में?
वह छाया केतन फहराता
मेघों के खँडहर में।

तब क्या मोहक वाग्विलास यह,
या विकास कविता का?
शशि का बिम्बित हास न समझो,
यह प्रकाश सविता का!

मुरली के प्रति

मीठे स्वर में बोल,
मुरलिके, मन की गाँठ खोल!

शुष्क शून्य दर्शन का अंबर
भाव सजल नव मेघों से भर,
बरसाए तूने रस निर्झर,
पंख स्वरों के खोल!

जड़ चेतन मोहे तूने नित
किए कूदते वन मृग स्तंभित,
अब साँपों से खेल न मोहिनि,
निज क्षमता मत तोल!

छिद्रों में अहि पलते छिपकर,
गूढ़ पाद, जिह्मगति, निःस्वर,
रोम रोम से सुनता निश्चित
चक्षुश्रवों का गोल!

वंश बेल धरती पर छाई,
काटे का विष मिले न भाई,
ये मणि फणिधर, विषधर, अजगर
काले कबरे खोल!

आस्तीं में घुस बिना बहाने.
किसे सूँघलें कब अनजाने,
साँप छुँछूदर की न दशा हो
इनके सँग मत डोल।

बिना रीढ़ ये रेंग धरा पर
लुक छिप कर नित फिरते डर डर,
भूल न इनके मुँह में पड़ना,
ये सुहावने ढोल!

उठती विष की लहर लहर पर
चलता एक न जंतर मंतर,
नाग दंश के लिए भला क्या
झाड़ फूँक का मोल!

ऐसे जीव बहुत सुरपुर में
साँप लोटते जिनके उर में,
ये धामिन, कौड़िया, गेंहुवन,
इनको लगा न कोल।

ये द्विजिह्व, भुज जीवी, दुमुँहे,
इनके विष को नकुल ही दुहे,
नाग खिलाने की इच्छा तज,
मधु में विष मत घोल।

विद्रोह के फूल

कहाँ खोंस लाई कबरी में
फुंदे वाले लाल फूल
आँगन में खड़ी जपा की झाड़ी ?—

हरी भरी झबरी कबरी में
मणि की मालें रहीं झूल,
सलवटें पड़ी मखमल की साड़ी,
पहने खड़ी जपा की झाड़ी !

फूल ?
नहीं,—ये लपटों के दल
पावक वाहक तूल,
तप्त अंगार, रक्त स्मित शूल !

जब भी ये जिस घर में आते
कलह विरोध विवाद बढ़ाते,
लोग तभी श्रद्धा भय से
देवी को इन्हें चढ़ाते,—
पूज प्रकृति को शांति मनाते !

यह जो भी हो,
फटे कलेजे के-से टुकड़े

इनके मुखड़े—
भूले दुखड़े—
मन के भीतर आग लगाते !

हरियाली उगला करती थीं जिसकी डालें
सुलग रहीं अब उसके उर में भीषण ज्वालें ;
लटकी हों मुंडों की मालें !

जाने, कहाँ, अचेतन की किस गहराई में
बंद किए थी यह निज मुट्ठी में चिनगारी ,
जो अब बाहर फूट क्रांति की पुरवाई में
भरतीं लपटों की किलकारी !
बुझी नहीं वह हरित जलधि में डूब ,
ज्वाल बन निखरी, दाँव न हारी !
(दारुण शोभा की चंडी बन हँसती नारी !)

यह जो भी हो,
टहनी के प्रत्येक जोड़ पर
जीवन की पगडंडी के प्रत्येक मोड़ पर
आज चटक उठती चिनगारी,—
प्रकृति मूक विद्रोह से भरी ,
मृत्यु मारती कटु किलकारी !

कहाँ गूँथ लाई कबरी में
रक्त जिह्व रतनार फूल
आँगन में अड़ी जपा की झाड़ी ?—

चिकनी केंचुल सी कबरी में
मणि की ज्वालें रहीं झूल,
अंगारे जड़ी मखमली साड़ी
पहने खड़ी जपा की झाड़ी!

गिरि प्रांतर

उन नीलम ढालों पर लिपटे
रेशम के सुरधनु फहराते,
मरकत की घाटी में सुलगे
वन फूलों के झरने गाते।

आरोहों पर मधु मर्मर पी
निःस्वर रजत समीर विचरती,
दूध धुली, ऊनी भापों की
किरणों की भेड़ें हिम चरतीं।

उन क्षितिजों की ज्योत्स्नाओं में
परियाँ अभिसारों को आतीं,
धूपछाँह बीथी में लुक छिप
हेम गौर शशि कला सुहाती।

घन नीहार ढली पीठों पर
साँझों की पग चाप बिछलती,
दिन में, धरती की सलवट सी
मसृण घनों की छाया चलतीं।

भुजगों सी कंधों पर लटकीं
रज की रश्मि रज्जु बल खातीं,
मंत्र मुग्ध पटबीजन झमका
जादू की कंदरा लुभातीं।

चीलों-से मँडरा वन अंधड़
गूँगी खोहों में खो जाते,
शिशुओं-से हिम ग्रीष्म मचल शत
निर्जन पलनों में सो जाते!

पौ फटते, सीपिया नील से
गलित मोतिया कांति निखरती,
उन शृंगों पर जगे मौन में
सृजन कल्पना देही धरती!

झाँक झरोखे से स्वप्नों के
सलज उषा नखशिख रँग जाती,
द्वाभाएं हँस गिरि प्रांतर में
दिक् प्रभूत वैभव बरसातीं!

पतझर

अनलंकृत सौन्दर्य! प्रकृति के रेखा चित्र अकल्पित!
नग्न टहनियों के ठूँठे, नीलिमा जड़े, छवि पंजर,
धूपछाँह संगति से, पल्लव मांसल परिणति से भर
तुम मधु के मंजरित स्वप्न अंतर में करते जागृत!

स्वल्प, अकृत्रिम कला शिल्पिता के ध्वनिगूढ़ निदर्शन,
रंगों की रुचि के स्तर करते दृष्टि सरणि को विस्मित,
रूप चयन, अवयव संयोजन, शक्ति, व्यंजना, इंगित,
सूक्ष्म मितव्ययिता करते अद्भुत प्रभाव संवर्धन!

सूचि मसृण, शत अरुण पीत सित हरित रेशमी किसलय
गहरी हलकी रलच्छायाओं में कँप कँप प्रतिपल,
दिग् दिगंत में खोई अपलक दृश्यपटी पर निश्चल,
शाश्वत गति में जीवन स्थिति का संभ्रम भरते निश्चय!

मुँदी रंगस्मिति मृदु अधरों में, मौन अभी मधु मर्मर,
सुनता जिसको मैं मन के उत्सुक श्रवणों में प्रतिक्षण,
रजत कुहासे में गुंठित कलियों के अविकच आनन
रँग देती कल्पना तूलि शत वर्णों में दृग-सुखकर!

विधुरा फाल्गुन की संध्या: वन बीथी में इठलाती
मदिर वनैली गंध, मधुर भीनी महकों से गुंफित,

नासा रंध्रों में घुस कर, प्राणों को कर सुख मूर्छित,
शत शत अस्फुट सुमनों की मधु स्मृति उर में भर लाती !

आम्र अशोक, शिरीष मधूक, कनेर लोध, हिम कुंठित,
पत्र शून्य शाखाओं के कृश स्नायु जाल तरु वन में
माया बल से मुकुलित हो, सहसा जग उठते मन में,—
धृष्ट शिशिर की मदिर साँस पी, वन श्री कंटक पुलकित !

देख रहा मैं, शुष्क हरित त्वच कुरबक, चंपक, चलदल,
निम्ब, पर्ण, कचनार, फालसा, अम्ल, कुसुम द्रुम हर्षित
मुखर चंचुलंबी नीड़ों को डालों में कर दोलित,
मत्त समीरण स्पर्शों से कँप, खोल रहे तंद्रिल दल !

धूसर साँझों में, कुहरों के मूँदे प्रात कुम्हलाते,
म्लान कमल के दिवस, सुहाता चल मृदूष्ण मेघातप,
पके धान लहराते स्वर्णिम धूपछाँह में कँप कँप,
बूट चबा, गन्ने का रस पी, थके किसान सिराते !

निर्मल सरि सर, झिलमिल करतीं हिलकोरें नीलोज्वल,
अबाबील फिरतीं, तिरतीं चितकबरी छाया जल पर;
सरपत पर लौकी लटकीं, वे नीड़ बया के सुंदर,
चढ़ीं लहरियाँ तरु पर, ये गिलहरियाँ रोमिल, पुच्छल !

झर झर पड़ते पीले पत्ते पांशुल कर दिङमंडल,
चरमर कर पैरों के नीचे, भँवरों में उड़ फर् फर्,
रजस्वती पांडुर वदना भू, अंगराग मल तन पर,

नहा महावट की फुहार में निखर रही तृण श्यामल!

रेणु, आंतदिक् रेणु, वेणु वन सी गुंजरित वनानी,
विटप बाहु से छूट सिहरतीं मुग्धा लतिका थर थर,
मुड़ती उड़ती खग गति, जब से झँपते मँडराते पर,
उचक उछलते मृग, कपि मलते दृग, शंकित वन प्राणी!

हहराती आती समीर, खर झंझा पंखों पर चढ़,
प्राण बीज बो रिक्त धरा पर, कंपित कर वन प्रांतर,
गहराती जाती रज, लटका ताम्र पात्र सा अंबर,
मलय बनेगी पुनः प्रभंजन, धूल धुंध घन से कढ़!

हे अपरूप, दिगंबर, दारुण सुंदर, चिर तांडव रत,
मुझे ज्ञात, नित प्रलय सृजन, पतझर मधु साथ विचरते,
विद्रोही तुम, जीर्ण त्रिरस भू भार जगत का हरते,
भग्न रिक्त को पूर्ण, पुरातन को कर नूतन अविरत!

हे दुर्दम, सीत्कार भरो हिम कवलित भव कानन में,
गूँज उठे जीवन जर्जर कंकालों का सूनापन,
रुधिर गा उठे हृदय शिराओं में भर यौवन स्पंदन,
नवल प्रवालों की शोभा सुलगे विषण्ण दिशि क्षण में!

यह कैसी साँवर्ण चेतना ज्वाला जग में छाई,
धरती की रज से करती जो नभ के मुख को रंजित,
गुह्य संधि वेला: स्वप्नों से मन का गहन प्ररोहित,
अगणित संभावना सुनहली लपटें लेकर आई!

हाँ, असंख्य ! दिङ् मुकुलित होने को अभिनव मानवपन,
नग्न भग्न दैन्यों का जग मधु की आशा से गुंजित,
भरते जाते विषम छिद्र जीवन हरीतिमा से स्मित,
दूर नहीं अब बहिरंतर मानव रूपांतर का क्षण !

क्रांति दौड़ती, क्रांति चतुर्दिक्, दिक् पंजर पतझर में
लपक दौड़तीं आवेशों की लपटें उठ लपटों पर,
गरज रहे शत अंधड़, डिगते गिरि, उफनाते सागर,
उपचेतन के मूक भुवन चिल्लाते अंतरतर में !

कब सशंक, मंथर, श्लथ गति से तुम्हें रेंगना भाता ?
शृंग गर्त शत लाँघ सिंह-से, भर दहाड़ से गह्वर,
क्षिप्र रभस तुम चढ़ते निर्भय गर्जित कल्लोलों पर,
वात्या चक्रों पर दुर्धर रथ घर्घर बढ़ता जाता !

शत अभिवादन ! क्रांत दृष्टि, भू ऋतुओं के अधिनायक,
झंझारूढ़ युगांतर की आत्मा अबाध, अप्रतिहत,
संधि काल : संक्रमणशील तुम, मुक्त करो मानव पथ,
जीर्ण शीर्ण हो ज्वाल पल्लवित, नवल वसंत विधायक !

दीपक

दीपक जलता !
युग युग से मन तपता, गलता,—
दीपक जलता !

राज महल थे कभी सँजोए इसने
आज खँडहरों का तम इसको हरना,
रंग सभा का था चिराग जो रोशन,
हाट बाट अब देना उसको धरना !
एक अनेक हुआ घट घट में,—
युग संध्या यह, दिन अब ढलता !
दीपक जलता !

कज्जल की लौ विजय ध्वजा फहराती,
नील धुँए का स्वप्नाकाश बनाती,
चंचल इच्छा के शलभों से घिर कर
निज छबि मंडल का संसार बसाती !

सिर धुनती वह, धधक, मचलती,
तम का दैत्य न टलता!
दीपक जलता!

दीपक क्या रे, तेल, ज्योति या बाती,
या अंजुलि भर वह मिट्टी की थाती?
या इन सब का मेल अकिंचन,
बात न कुछ बन पाती!

दीप तले छाया अँधियाला,—
यह मन की असफलता,
दीपक जलता!

भूत निशा का रे प्रहरी वह,
धरा तिमिर कब हरने आया?
कहाँ अपार समुद्र, कहाँ यह
क्षुद्र तरी सी कंपित काया!

अंधकार इसकी द्वाभा में
उमड़, आँख को खलता!
दीपक जलता!

वह प्रभात की स्वर्णिम मौन प्रतीक्षा,
जग की झंझा लेती कठिन परीक्षा,—

महत् ज्योति में लय होना ही
उसके क्षण जीवन की दीक्षा !

यह प्रभात ही का प्रकाश रे,
दीपक उर में पलता !
दीपक जलता !

दीप-शिखा-इंगित बन उतरी
अंध गुहा में महिमा,
आत्मा मन मंदिर में निखरी
स्वप्नों की बन प्रतिमा !

मिट्टी हो ज्वाला का पलना,—
मात्र स्नेह वत्सलता !
दीपक जलता !

दीप रचना

ये कवि की दीपों की पाँतें !
शलभ प्रीति शोभा पंखों से
चंचल मन पर करती घातें !

भू मानस की गुहा अँधेरी
तृष्णा ममता देतीं फेरी,
मँडराती भावों की आँधी
सिर पर, दुख की काली रातें !

प्राण वर्ति जल जल स्नेहोज्वल
मिट्टी से उठ निज लौ के बल,
दिग् दीपित कर भव रजनी को
करती हँस तारों से बातें !

ये कज्जल की विजय ध्वजाएं
लेती भू की निशा बलाएं,
अंधकार से घुलमिल जग के
अंधकार को देतीं मातें !

उतर स्वर्ग की ज्योति अवनि पर
मर्त्य तिमिर को बाँहों में भर,
मानवीय वन निखर रही अब,
अजर अमर देवों की जातें !

नए साम्य का स्वर्ग धरा पर,
एक ज्योति अब बाहर भीतर,
नई पौध युग के पलने में
तम को देख चलाती लातें !

ये छबि की आलोक शिखाएं
मानव को नव दिशा दिखाएं,
मौन प्रतीक्षा में जल, लाएं
नए क्षितिज पर नई प्रभातें !

गीत

ए हो, पावक के पल्लव वन !
दहक रहे कब से प्राणों की
ज्वाला में तुम प्रतिक्षण !

इस पावक वन में ही सीता
लिपट अग्नि से, बनी पुनीता,
इस ज्वाला की पायल पहने
नाचे राधा मोहन !

यही अग्नि दृग में कर धारण
सुर असुरों के वंदित त्रिनयन,
इस ज्वाला की तरल ज्योति ले
उतरी सुरधुनि पावन !

जब पावक तारों से क्रीड़ा
करती वाणी तज भय व्रीड़ा,
विद्रोही प्राणों में बजता
प्रलय सृजन का गायन !

ये ही लपटें इन चरणों में,
लिपटीं रूप गंध वर्णों में,
इस ज्वाला ही की इच्छा में
जल जल उठते तन मन !

सदा रहा यह स्वर्गिक पावक
नव जग जीवन का अभिभावक,
इस पावक का यज्ञ कुंड ही
सुख दुख का भू-प्रांगण !

वेणु कुंज

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

फूट फूट पड़ते आकुल स्वर
तीव्र मधुर श्रुतियों में झर झर,
इसने बिंधा बिंधा निज अंतर
पाया दाहक गीतों का वर!

क्या तुम इसका गान सुनोगे?
उसका गोपन मर्म गुनोगे?
क्या तुम अपना हृदय रक्त दे
प्राणों का बलिदान चुनोगे?

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

किसने छेड़ी यह स्वर लहरी
मर्म वेदना कँपती गहरी;
जलते तारापथ से यह धुन
अंबर के अंतर में छहरी!

सुलग रहे रवि शशि तारागण,
नाच रहे तन्मय हो त्रिभुवन,
सिहर सिहर उठता सागर उर,
झूम रहे मोहित जड़ चेतन!

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

करताली देते तृण पुलकित,
मुग्ध चराचर सुख से मूर्छित,
रहस गान पर, सरस तान पर
आत्म मूढ़ सुर नर मुनि विस्मृत!

गोपी मोहीं सुन मादन स्वन,
राधा रोई अर्पण कर मन,
यह प्राणों की पावक वंशी
बजती रहती रे क्षण अनुक्षण!

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

स्फटिक वन

यह स्मृतियों का दग्ध स्फटिक वन !

शीत स्फटिक की शाखाओं पर
हिम जल धुले सीप के तरुदल
मन ही मन मधु मर्मर भरते,—
मंत्रों का जिनमें अमोघ बल !

गलित मोतियों की फुहार सी
फूलों की पंखड़ियाँ झर झर
शून्य-मग्न करतीं अंतर को
गंध हीन सौरभ उसाँस भर !

खग पंजर बैठे पिंजर में
भरते अंबर में उड़ान स्मित,
निःस्वर कल कूजन स्तवनों से
माया कानन को रख मुखरित !

श्वेत अस्थि के हिरन, चौकड़ी
भरते, नभ में टँग कर निश्चल,
हरित नील हिलकोरों में हिल
बहता पुष्करिणी का स्थिर जल !

अश्रु धूम का रजत कुहासा
ओढ़ रहता शापित प्रांतर,
छाया सी ऊषा संध्याएं
फिरतीं उन्मन चरण चाप धर!

यहाँ मौन स्वप्नों के पथ से
आता जाता विरह स्तब्ध मन,
जहाँ प्रेयसी की निर्मम स्मृति
रहती ध्यानावस्थित, पावन,—

साँसों के सूने मंदिर में,
प्रतिपल उर स्पंदन पर स्थापित!
प्रीति शिखा करती नीराजन,
प्राण अर्ध्य निज करते अर्पित!

द्रवित चाँदनी सी अपलक छबि
छिटकी रहती वन में अविदित,
घटती बढ़ती चंद्र कला, पर
प्रीति नित्य रहती निश्छल स्थित!

विस्मृत स्मृति के दूह ज्वार पर
बसा हुआ यह स्फटिक हृदय वन,
फेनिल भाव पुलिन प्लावित कर
खुलता स्वप्न कक्ष वातायन!

युग मन के प्रति

ओ तिक्त मधुर, कुंठा निष्ठुर,
पावक मरंद रज के युग मन,
ओ तड़ित् प्रज्वलित जीवन घन,
नव युग के दारुण प्रलय सृजन!

ओ मुक्त रुद्ध, ओ क्रुद्ध बुद्ध,
ओ शांति क्रांति के नव दर्शन,
ओ बहिरंतर के अंतिम रण,
ओ सूक्ष्म स्थूल के संघर्षण!

भू जीवन का कंकाल खड़ा
हँस रहा, युगों से क्षुधित घोर,
यह भोर निशा, तम का दानव
पकड़े प्रकाश के केश छोर!

ऊपर छायाप्रभ रश्मि वध
चलते जिसपर अमरों के रथ,
नीचे धरती की खोहों में
फैले तम-के-फन अगणित पथ!

यह काँटों से बोया आँगन,
तुम धरो फूल के घायल पग,
मत कुम्हलाओ भू ज्वाला में,
विचरो, विहँसे उपचेतन जग!

श्रद्धा सूई की नोक, उसी पर
तुम्हें खड़े होकर अविचल
संकट के पर्वत झेल, ठेल,
वितरित करना जीवन मंगल!

लो, अब अपने को अतिक्रम कर
पीओ जन मन का घृणा गरल,
यह प्रीति सुधा, जो भू घट में
वासना क्षुधा बन, रही मचल!

शत भू-कंपों में दौड़ रही
मानव प्राणों की रुद्ध साध,
ज्वालामुखियों के वमनों में
बह, उबल रही तृष्णा अबाध!

ओ ज्योति तमस के अमृतपुरुष,
यह जन समुद्र का आवाहन,
तुम कूदो अतल धरा तम में,
पार्थिव युग सेतु बनो नूतन!

ओ भीषण सुंदर, मेघ मौन
युग के विद्रोह भरे आनन,
गरजो, बरसो हे, मानस मरु
हो जीवन उर्वर, नव चेतन!

नेहरू युग

अभिवादन,
हे नेहरू युग के नए संचरण,
शत अभिवादन !

गांधी युग के सूक्ष्म कुहासों से कढ़,
प्रौढ़ यंत्र युग के मारुत गति चक्रों पर बढ़,
उतर रहा लो, मूर्त रूप धर
जन समाजवादी धरती पर
नेहरू युग, निर्धूम अग्नि सा उज्वल,
पावन, शीतल !

गांधी ही का सत्य बना नव युग का सारथि,—
अन्य न थी गति !
धन्य हुई युग कवि की भारति !
विजित हो रहा यांत्रिक दानव,
निखर रहा जनतांत्रिक मानव !

बदल रहा, लो, गोल छेद भी द्वन्द्व तर्कमय
बाह्य परिस्थितियों का दुर्जय !
बदल रही खूँटी चौकोर,—विराट् समन्वय !
बदल रहा, युग रुद्ध भू हृदय !
शुभ्र अहिंसा अश्व सौम्य कर रहा दिग् विजय,
नेहरू का मन ही नव युग का मन निःसंशय !

भौतिकता-आध्यात्मिकता का
मानवता - सामूहिकता का
यह महान परिणय,
प्रज्ञा विज्ञान का उभय!
महत् ध्येय, साधन मंगलमय,
नव सर्वोदय, नव अरुणोदय!

जय मध्यम पथ!
जय तृतीय बल!
शांति क्षेत्र होता दिग् विस्तृत,
संभव भू पर सहस्थिति निश्चित,
देखो, बढ़ता मानवता का रथ
धीरोद्धत,—
पंचशील का ले ध्रुव संबल!

रक्तहीन नवलोक क्रांति हो,
दूर भ्रांति हो,
विश्व शांति हो!
युद्ध ध्वंस हो हिंस्र समापन,
भरें धरा व्रण,—
अणु हो रचना श्रम का वाहन!
भू निर्माण सृजन के शुभ क्षण
करें अवतरण,—
निर्भय हों जन!
नेहरू युग के नए चरण,
शत युग अभिवादन!

संदेश

मैं खोया खोया सा, उचाट मन, जाने कब
सो गया, तखत पर लुढ़क, अलस दोपहरी में,
दुःस्वप्नों की छाया से पीड़ित, देर तलक
उपचेतन की गहरी निद्रा में रहा मग्न!

जब सहसा आँख खुली तो मेरी छाती पर
था असंतोष का भारी रीता बोझ जमा!
मन को कचोटती थी उधेड़बुन जाने क्या,
अज्ञात हृदय मंथन सा चलता था भीतर,—
अवसाद घुमड़ता था उर में कड़वा, फीका!
सब अस्तव्यस्त विशृंखल लगता था जीवन,—
मेरा कमरा हो परिचित कमरा नहीं रहा,
जी ऊब ऊब उठता था, मन बैठा जाता!

मैं सोच रहा था, जाने क्या हो गया मुझे,
मन किन अनजानी डगरों में है भटक गया,—
कितने अँधियारे कोने हैं मानव मन के!
कुछ किए नहीं बनता, दिन यों ही बीत रहे,
पानी सी बहती आयु कभी क्या लौटेगी?
इस निरुद्देश्य जीवन से किसको लाभ भला?
भू भार बने रहने से तो मरना अच्छा!

इतने में मेरी दृष्टि फर्श पर जा अटकी,
जिस पर जाड़े की चिट्टी, ढलती, नरम धूप

खिड़की की चौखट को कुछ लंबी तिरछी कर
थी चमक रही टूटे दर्पण के टुकड़े सी,—
पिघली चाँदी के थक्के सी छलकी चौड़ी!
जाजिम पर थी बन गई तलैया मोती की,
जिसमें स्वप्नों की ज्वालाएं लहराती थीं!
दूधिया भावना में उफान उठ आया हो!

मैं क्षण भर में मन के विषाद को भूल गया,
वह धूप स्निग्ध चेतना स्पर्श सी लगी मुझे—
ज्यों राजहंस उतरा हो खिड़की के पथ से!
मेरा मन दुविधा मुक्त हो गया, दुःख भूल,
घन के घेरे से निकल चाँद हँस उठता ज्यों!

वह मौन नीलिमा निलयों में बसनेवाली,
रुपहले घनों की अलकें सहलाने वाली,
वह सूर्यमुखी किरणों की परियों से वाहित
सकुमार सरोरुह-से स्तनवाली सलज धूप!—
वह रजत प्रसारों में स्वर्णिम अँगड़ाई भर
ऊषा की स्वप्निल पलकों पर जगनेवाली,
वह हेम हंस के पंखों पर उड़ने वाली
गोरी ग्रीवा बाँहों वाली चंपई धूप!—
वह तुहिन वाष्प के धूपछाँह बल्कल पहनी
सौरभ मरंद तन वाली, मलयज सनी धूप,
वह फूलों के मृदु मुखड़ों पर हँसने वाली
नीले ढालों पर सोने वाली सुघर धूप!—
वह हरी दूब के पाँवड़ पर चलने वाली

रेशमी लहरियों बीच बिछल जाने वाली,
वह मुक्ता स्मित सीपी के सतरँग पंख खोल
शत इंद्रधनुष फहराने वाली सजल धूप,—
वह मेरे घर के तुच्छ पटल पर, धूल भरे
मखमली गलीचे पर, चुपके सहमी बैठी,
मेरे कठोर उर को कृतज्ञता-कोमल कर
सुख द्रवित कर गई, प्रीति मौन संवेदन दे!

मैं उसे देख, श्रद्धा संभ्रम से उठ बैठा,
वह मुझे देख स्नेहार्द्र दृष्टि, मुसकुरा उठी!
वह विश्व प्रकृति की दूती बन कर आई थी,—
मैं स्मृति विभोर, स्वप्नस्थ हो उठा कुछ क्षण को,
वह मेरे ही भीतर से मुझसे यों बोली :—

"क्या हुआ तुम्हें, ओ जीवन शोभा के गायक,
तुम ज्योति प्रीति आशा के स्वर बरसाते थे!—
उल्लास मधुरिमा, श्री सुषमा के छंद गूँथ
तुम अमरों को कर स्वप्न मूर्त, घर लाते थे!
क्यों आज तुम्हारी वीणा वह निःस्पंद पड़ी,
क्यों अब पावक के तार न मधु वर्षण करते?
कल्पना भोर के पंछी सी उठ लपटों में
क्यों नहीं स्वप्न पंखी उड़ान भरती नभ में?

"क्या सोच रहे हो? उठो, क्षुब्ध मन शांत करो,
तुम भी क्या जग की चिन्ता के कर्दम में सन
संदेह दग्ध, उद्भ्रांत चित्त हो खोज रहे—

"क्या है जीवन का ध्येय, प्रयोजन संसृति का,
सुख दुख क्यों हैं, मानव क्यों है, या तुम क्यों हो?

"तुम भी वादों के वेष्टन में मन को लपेट
मानव जीवन के अमित सत्य का विकृत रूप
गढ़ने को आतुर हो?—सस्ता संस्करण एक
निर्मित कर उसका, थोथे तर्कों के बल पर?—
जन सृजन चेतना को, विकास क्रम को अनंत
अंजलि पुट में बंदी करने का साहस कर!!

"या भौतिक मूल्यों की वेदी पर बलि देकर
मानव मूल्यों की, तुम धरती पर नया स्वर्ग
रचने को व्याकुल हो, यंत्रों के चक्रों में
मानव का हृदय कुचल, लोहे की टापों से?
अथवा तुम हिंसक स्वार्थों के पंजे फैला
नोचना चाहते जीवन के सुंदर मुख को!!

"तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को? तुम जिसके
आँगन में खेले कूदे, जिसके आँचल में
सोए जागे, रोए गाए, हँस, बड़े हुए!
जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्न प्रिया,
जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथों में,—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके, बने अमर शिल्पी!

"जिसने कोयल बन सिखलाया तुमको गाना,
मृदु गुंजन भर बतलाया मधु संचय करना,—

"फूलों की कोमल बाँहों के आलिंगन भर!
जिसके रंगों की भावुक तूली से तुमने
शोभा के पदतल रँगे, मनुज का मुख आँका,
जिससे लेकर मधु स्पर्श शब्द रस गंध दृष्टि
तुमने स्वर निर्झर बरसाए सुख से मुखरित!

"अब जन नगरों की अंधी गलियों में खोए,
ऊँचे भवनों की काराओं में बंदी हो,
तुम अपनी ही चिन्ता में घुलते जाते हो!
क्या लोक मान मर्यादा की पा स्थूल दृष्टि
निज सूक्ष्म स्वप्नदर्शी दृग तुमने मूँद लिए?

"लो, मैं असीम का लाई हूँ संदेश तुम्हें!
आओ, फिर खुली प्रकृति की गोदी में बैठो,
फिर दिक् प्रसन्न जीवन के आँगन में खेलो,–
उद्देश्य हीन भी रहना जहाँ मधुर लगता!
फिर स्वप्न चरण धर विचरो शाश्वत के पथ में,
कल्पना सेतु बाँधो भावी के क्षितिजों में!

"मन को विराट् की आत्मा से कर सर्वयुक्त
तुम प्यार करो, सुंदरता से रहना सीखो,—
जो अपने ही में पूर्ण स्वयं है, लक्ष्य स्वयं!
कवि, यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का!"

मैं मन की कुंठित कूप वृत्ति से बाहर हो,
चिन्ताओं के दुर्बोध भँवर से निकल शीघ्र

पाहुन प्रकाश के निरवधि क्षण में डूब गया,—
सुनहली धूप के करतल के शाश्वत में लय।
मन से ऊपर उठ, तन की सीमाओं से कढ़,
फिर स्वस्थ समग्र, प्रफुल्ल पूर्ण बन, मोह मुक्त,
मैं विश्व प्रकृति की महदात्मा में समा गया।

मुझको प्रसन्न मन देख, धूप सकुचा...कुम्हला...
बोली, "अब बिदा! मुझे जाना है!—वह देखो,
किरणें अस्ताचल पर कंचन पालकी लिए
मुझको ठहरी हैं, क्षितिज रेख का सेतु बाँध!

"युग संध्या यह, अस्तमित एक इतिहास वृत्त,
ढलने को ब्रह्म अहन्, बुझने को कल्प सूर्य,
मुँदने को मानस पद्म,-उदित ज्योतिर्मय कवि,-
घूमता विवर्तन चक्र, आज संक्रांति काल!—

"यदि अंधकार का घोर प्रहर टूटे तुम पर,
तो मुझे स्मरण रखना, यह ज्योति धरोहर लो,—
जब होगी मानस ग्लानि, घिरेगी मोह निशा,
मैं नव प्रकाश संदेशवाह बन आऊँगी,
संध्या पलनों में झुला सुनहले युग प्रभात!"

यह कह वह अंतर्धान हो गई पल भर में,
सिमटा उर में अपने आभा के अंगों को!

अस्तित्ववाद

आः, ये केवल ओसों के कण !
इनको हास कहो कि अश्रुजल,
धरती के भूषण, गीले व्रण,—
वास्तव में, ये ओसों के कण !

इन्हें विगत दायित्व कहो या
वर्तमान अस्तित्व कहो या
भावी के जगमग चेतन क्षण,—
ये यथार्थ में ओसों के कण !

अविज्ञेय वस्तुएं विश्व में
सूक्ष्म भावना जग से आवृत,
क्या आदर्श यथार्थ शून्य है,
अथवा जड़ चेतना से रहित ?
अपनी अपनी दृष्टि और मन,—
वैसे तो ये ओसों के कण !

पृथक् नहीं रोदन से गायन,
सुख दुख, दुख ही सुख जाता बन;
व्याप्त मात्र आनंद तत्व घन,
साक्षी फूलों का मुख दर्पण !
स्वप्न कहो या सत्य चिरंतन—
कहने को ये ओसों के कण !

आत्म निवेदन

कैसे भेद बुझाऊं गोपन !
हे मानव घटवासी, तुमसे
कहाँ छिपाऊं भी अपनापन !

तुम चुपके आए जीवन में
बाँध गए शाश्वत को क्षण में,
स्वयं रहस्य रहा मैं निज हित,—
रहा जगत के हित कर-दर्पण !

पीकर तिक्त मधुर मधु ज्वाला
रिक्त किया जीवन का प्याला,
मैं संयत, चैतन्य रहा नित,
हुआ न मोह प्रमत्त एक क्षण !

प्रतिपल दे कटु अग्नि परीक्षा,
पग पग पर ले असि पथ दीक्षा,
हुआ तप्त, मर्माहत भी मैं,
दुःख दग्ध, कुंठित न किया मन !

पिया स्वाति का अमृत अनश्वर,
पाया भगवत् करुणा का वर,
मौन, विनम्र रहा,—श्रद्धा रत,
भाया मुझे न आत्म प्रदर्शन!

मैं तर्कों वादों में विरमा,
बौद्धिक सोपानों पर बिलमा,
भटका कभी न रिक्त शून्य में
जन धरणी पर करता विचरण!

उड़ स्वर्णिम स्मित आकाशों पर
पार रजत समतल प्रसार कर,
मैं ऊबड़ पथ पर अब चलता
बीहड़ वन का अथक पांथ बन!

निर्जन मग को कर पग मुखरित,
मृग तृष्णा से मुक्त, अपरिचित,
जीवन मरु में करता आया
हँसमुख हरित स्थलों का सर्जन!
कैसे भेद बुझाऊँ गोपन!

अभिवादन

स्वागत हे, जन मन के वासी !
राजहंस भारत मानस के
जनगण प्रीति तरंग विलासी !

जन स्वतंत्रता के तुम प्रतिनिधि,
लोक प्रीति जीवन की प्रिय निधि,
तुम जन मानव भावी के विधि
विश्व शांति के अथक प्रयासी !

विविध देश, पर एक जन धरा,
खड़ी नियति जन हित स्वयंवरा,
जीवन मरु फिर हो न क्यों हरा
तुम भू दुख दारिद्र्य विनाशी !

डूब रही जर्जर भव तरणी,—
यह गौतम गांधी की धरणी
बने विश्व संकट तम हरणी,
धर्म चक्रमय ध्वजा प्रकाशी !

अभिवादन करता जन चारण
युग अभाव हे करो निवारण,
पर हित किए स्वतः व्रत धारण,
तुम जनगण मंगल अभिलाषी !

गरज रहा चेतना जलधि भव,
नव प्रकाश का यह युग विप्लव,
बरस रहा देवों का वैभव
जन मन पर, सद्भाव विकासी!

बढ़ें चरण, लाँघें जड़ बंधन,
देंगे पथ झुक गिरि सागर वन,
कहाँ रुका कब लोक जागरण
सिद्धि साधनों की चिर दासी!

शत अभिनंदन, जन मन वासी!
स्वर्ण हंस भारत मानस के
जनगण हर्ष तरंगोच्छ्वासी!

लोक गीत

जन भू का स्वर्ग द्वार,
हृदय हार लोकायन,
स्वर्ग द्वार लोकायन,
हृदय हार लोकायन !

ऋद्धि मुक्त चार द्वार,
नंदित नित नव विचार,
अभिनव भावाभिसार,—
सृष्टि सार लोकायन !

दर्शन विज्ञान संग
ललित कला के षडंग
लोक गीत, नृत्य रंग
का प्रचार लोकायन !

सृजन कर्म जन साधन,
सृजन कर्म तप पूजन,
जीवन का सृजन पर्व
हो अपार लोकायन !

संस्कृति का नव सँदेश
युक्त करे निखिल देश,
जन मन का मिलन तीर्थ
हो उदार लोकायन !

शोभा के अमर चरण
भू मंगल करें वरण,
मानवता की बलिष्ठ
हो पुकार लोकायन!

इष्ट बृहत् विश्व साम्य,
लोक श्रेय सतत काम्य,
शोषण अन्याय हेतु
हो प्रहार लोकायन!

विस्तृत कर जन मन पथ,
वाहित कर जीवन रथ,
बन प्रकाशवाह, हरे
अंधकार लोकायन!

मनुष्यत्व महत् ध्येय,
आशा उर में अजेय,
घृणा द्वेष मध्य प्रेम
का प्रसार लोकायन!

दीपित मुख कर दिशि क्षण,
कुसुमित जन भू प्रांगण,
ज्योति प्रीति श्री सुख का
हो विहार लोकायन!

कूर्मांचल के प्रति—

जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न, शत स्वागत !
हिम सौन्दर्य किरीटित जिसका शारद मस्तक उन्नत
        उषा रश्मि स्मित, स्फटिक शुभ्र, स्वर्णिम शिखरों में उठ कर
पुण्य धरा के स्वर्गोन्मुख सोपान पंथ सा विस्तृत
निज अवाक् गरिमा से करता नर अमरों को मोहित,
        निखिल विश्व को दिग् विराट् भौगोलिक विस्मय से भर !

बाल प्रवासी शिशु घर लौटा, वह भी क्या अभ्यागत ?
स्नेह उच्छ्वसित, हेमज पुलकित अंचल का शरणागत !
        तेरी नैसर्गिक सुषमा में जननि, सदा से लालित,—
हँसमुख छायातप से गुंफित श्याम गौर जिसका तन,
श्री शोभा स्वप्नों से निर्मित गीत भृंग गुंजित मन,
        रजत अनिल सौरभ पलने में दोलित शैशव मुकुलित !

क्या न खगों ने मृदु कलरव भर प्रथम लोरियाँ गाईं ?
पंखों से बरसा कर सतरँग किरणों की परछाईं !
स्मरण नहीं क्या तुझको ? तू रहती थी सतत उपस्थित,
चित्र लिखी सी उड़ती तितली के सँग सँग उड़ मन में
कैसे बड़ा हुआ मैं, घुटनों के बल चल आँगन में,—
मां से बढ़ कर रही धात्रि, तू बचपन में मेरे हित !

धात्रि कथा रूपक भर : तू ने किया जनक बन पोषण,
मातृहीन बालक के सिर पर वरद-हस्त धर गोपन !
मातृ भूमि में मा का मुख शिशु ने पीछे पहचाना !
कूर्माचल, प्रिय तात, पुत्र मैं रहा कूर्मवत् दृढ़ व्रत,
खींच अधः इंद्रिय मुख भीतर, ऊर्ध्व पीठ पर अविरत
युग मन भार वहन करना जिसने स्वधर्म नित माना !

छुटपन से विचरा हूँ मैं इन धूपछाँह शिखरों पर,
दूर, क्षितिज पर हिल्लोलित सी दृश्य पटी पर निःस्वर
हलकी गहरी छायाओं के रेखांकित-से पर्वत
नील, बैंगनी, कपिश, पीत, हरिताभ वर्ण श्री छहरा
मोहित अंतर में भर देते आदिम विस्मय गहरा,
अंतरिक्ष विस्फारित नयनों को अपलक रख तद्वत् !

ऊपर, सीपी के रँग का नभ, नव मुक्तातप से भर,
रजत नीलिमा गलित, सहज हँसता सा लगता सुंदर !
ऊँचे उड़ने वाले, निर्जल, कौश मसृण, रोमिल घन
चूर्ण रुपहली अलकों में उलझा रवि किरणें उज्वल
मौन इंद्रधनुषी छाया का स्वप्न नीड़ रच, चंचल
उड़ती-चितवन के खग को बंदी कर लेते कुछ क्षण !

विजन घाटियों पर चढ़ कर शिशु मेषों-से दुग्धोज्वल
चित्रग्रीव हिम के घन पल में होते नभ में ओझल!
पावस में जब मिहिका में लिपटा रहता गिरि प्रांतर,
शैल गुहाओं में दहाड़ते सिंहों-से जग क्षण में
दुहरी तिहरी तड़ित् शृंखला तड़काते घन तन में,
बरसा कर आग्नेय सानुओं से स्फुलिंग के निर्झर!

षड ऋतुएं सुरबालाओं सी करतीं सजधज नर्तन,
वासंती किसलय कितने ही रँग करते परिवर्तन,—
रजत ताम्र, पाटल ईंगुरी, हरित पीत, मृदु कंपित!
सलज मौन मुकुलों में बरसा अर्ध निमीलित चितवन
फूलों के अंगों की अप्सरि सी रंग प्रिय यौवन
उड़ती पर्वत घाटी सौरभ पंखों में रोमांचित!

उच्च प्रसारों में लेटा, छाया मर्मर परिवीजित,
श्रांत पांथ सा ग्रीष्म ऊँघता भरी दुपहरी में नित!
पागुर करते दृढ़ निर्द्वन्द्व ककुद्मत् शैल वृषभवत्,
काले पड़ते तिग्म धूप से कुरँग तलैटी में रँग,
कूटों पर लिपटा रहता नीलातप मेघों के सँग,
चारवायु हिम जलद पंख का चँवर डुलाती अविरत!

मसृण तुहिन सूत्रों में गुंफित रजत वाष्प रज के कण
मोती के रँग के धूमों से स्फटिक शिला के घन बन,
प्रावृट् में कर शंख नाद, घिरते नीलांजन श्यामल
सुरधनुओं के दुहरे तिहरे फहरा छाया केतन,—
गिरि शृंगों पर तड़ित् स्खलित, भरते प्रचंड गुरु गर्जन,
नील पीत सित लोहित विद्युल्लतिका कंपित प्रतिपल!

मरकत हरित प्रसारों में हँस, दिक् प्रसन्न, तृण पुलकित,
फेनों के हीरक झरनों, मुक्ता स्रोतों में मुखरित
जब वर्षा के बाद निखरता हेम खंड स्निग्धोत्तर
इंद्रलोक सा रजतारुण स्वर्णिम छायाओं से स्मित,
सद्य धुले नव नीहारों का अर्ध नील कर विरचित,—
तब मन कहता, क्या न स्वर्ग सुख से निसर्ग मुख सुंदर ?

गहरे सूर्यास्तों को रँग सित वाष्पों की पीठों पर
नृत्य मुग्ध, उड़ता मयूर पंखी मेघों में अंबर !
ज्योत्स्ना में लगते दिगंत जब स्वप्न ज्वार हिल्लोलित!
निखिल प्रदेश मनाता शोभा निर्निमेष शरदोत्सव,
जिस अकथित सम्मोहन का करता अवाक् मन अनुभव,
मुक्त नील तारा स्मित लगता मौन रहस्य निनादित,

राजहंस सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल में,
सांपी के पंखों की छहरा रत्न छटा जल थल में !
धुली वाष्प पंखडियों में रँग भरते कला सुघर कर,
सुरधनु खंडों में किरणों की द्रवित कांति कर वितरित;
रंग गंध के लता गुल्म से गिरि द्रोणी अतिरंजित
देवदारु रज पीत सुहाती ग्राम वधू सी सुंदर !

हिम प्रदेश के यमजों-से हेमंत शिशिर कंपित तन
रजत हिमानी से जड़ देते गिरि कानन, गृह प्रांगण,—
हिम परियों की निःस्वर पद चापों से कर दिशि मुखरित,
निशि के श्यामल मुख पर उज्वल तुहिन दशन रेखा भर !
मंथित करती शीत वात शाखाओं के वन पंजर,
मुरझाता रवि आतप, दिशि मुख दिखते धूसर, कुंठित !

स्वर्गहास हिम पात!—शुभ्रता में अनिमेष दिगंतर
उड़ता राजमराल-गौर हर्षातिरेक में निःस्वर!
दिव्य रूप धरती निसर्ग श्री दुग्ध धौत भूतल में,
स्वप्न मौन ज्योत्स्ना सी निर्मल स्फटिक शांति में मूर्तित!
उड़ते रंगों के नृप, लोमश हिम खग, रवि कर चित्रित,
स्वर्गिक पावनता करती अभिसार मुग्ध दिशि पल में!

कौन तुम्हारी शोभा शब्दों में कर सकता कल्पित,
तुम निसर्ग सम्राट्, रूप गरिमा प्रतिपल परिवर्तित!
निभृत कक्ष में रंग प्रकृति नित सज शृंगार मनोहर
सुरधनु पट स्मित, तड़ित् चकित, करती शिखरों पर नर्तन!
तलहटियों में रँग रँग के वन-फूलों से मुकुलित तन
नव पल्लव अंचल में लिपटी वन श्री मन लेती हर!

मखमल के तल्पों-से श्यामल तरल खेत लहराए,
रोमांचित-से गिरि वन चीड़ों की सूची से छाए,
देवदारु वन-देवों के हर्म्यों के स्तंभों-से स्थित:
घनी वाँझ की बनी मोहतीं हरित शुभ्र मर्मर भर,
शृंगों के दृढ़ आयामों की पृष्ठभूमि में अंबर
लगता शाश्वत नील शांति सा नीरव, ध्यानावस्थित!

विहगों के स्वर उर में अलिखित गीतों के पद बनते,
तरु वन की अस्फुट मर्मर में भाव अचेतन छनते,
क्षिप्र मुखर स्रोतों में रहते अगणित छंद तरंगित!
मूर्त प्रेरणा सी लहराती नभ में शतधा विद्युत्,
साँझ प्रात के कांचन तोरण किसे न लगते अद्भुत,
रजत मुकुर सरसी में हँसता मुख अनंत का बिम्बित!

तैल चित्र सी उभरी गहरी शैल श्रेणि छायांकित
उड़ते मेघों के घन तंद्रिल धूपछाँह से गुंफित,
स्वर्गिक कोणों, वर्तुल शोभा क्षितिजों में छहराई—
रश्मि वाष्प की सृष्टि—सहस्रों रंगों से भर जाती,—
ताम्र हरित नीलारुण स्वर्णिम शिखरों पर मँडराती
घुली साँझ को भाव लीन हलकी कोमल परछाँई!

शिखरों पर उन्मुक्त साँस ले, स्निग्ध रेशमी मारुत
सहज लिपट जाता तन मन से, गंध मधुर, मंथर द्रुत,
वाष्प मसृण, नीहार नील, हिम शीतल, किसलय कंपित।
रजत तुषार सरों में थर् थर् कँपता निर्मल अंबर,
आदि सृष्टि संगीत सतत बहता शृंगों से झर झर
स्वच्छ चेतना के स्रोतों में, गिरि गहनों में मुखरित!

तृण कोमल पुलिनों पर क्षण भर लेट उच्च समतल में
नाम हीन गंधों से तंद्रिल तरु छाया अंचल में,
गा उठता मन मुक्त स्वरों के पंख खोल निर्जन में।
कुदक निकट ही शशक कुतरते नव गुल्मों के कोंपल,
शाखा शृंगों वाले वन मृग पीते झरनों का जल,
मँडराती, निश्चल, आतप प्रिय चील सुदूर गगन में।

मृदु कलरव भर रँग रँग के खग वन-परियों के कुसुमित
क्रीड़ा कुंजों को रखते सुर वीणाओं से झंकृत,—
गीत वृष्टि कर तरु के नभ से मोहित वन अटनों पर!
सद्यः स्वर्णिम नवल प्रवालों का रँग, हिम से पोषित,
प्रथम उषा के अंगराग सा लगता शाश्वत लोहित,—
मधु मर्मर में कँपते वन के अगणित वर्णों के स्वर

उदयाचल पर, कनक चक्र सा, रश्मि स्फुरित रवि उठकर
दिग् भास्वर ऊषाओं से आरोहों को देता भर,
संध्या के नत मस्तक पर रक्तोज्वल मणि सा विजड़ित!
दिव्य छत्र सा रजत व्योम किरणों से विरचित ऊपर
रत्न पीठ सा सानु सुहाता नीचे श्यामल सुंदर,—
इंद्रनील गोलार्ध जड़ित मरकत मंदिर सा शोभित!

आदि महत्ता पशु जग की अब भी वन करते घोषित,
सिंह ऋक्ष वृक गिरि खोहों को रखते भीम निनादित,—
चकित, चौकड़ी भीत मृगों पर झपट टूटते नाहर!
श्वेत नील काले उपलों से कंठ वृषों के भूषित,
भेड़ों की घंटी से रहतीं गिरि डगरें कल गुंजित,
उच्च शाद्वलों से छनते चरवाहों के मुरली स्वर!

सुघर कृषक वधुएं नित खेतों में सोना उपजातीं,
कंठ मिला जन के सँग कृषि के गीत हुड़ुक पर गातीं,—
त्योहारों में नाच गान रंगों के रच बहु उत्सव!
नीलारुण किरणों में पलते स्वस्थ सौम्य नारी नर
गौर कपोलों में ऊषा की लाली लिए मनोहर,
लज्जारुण लगतीं जिससे अज्ञात यौवनाएं नव!

उग्र कराल शिलाएं भरतीं मन में विस्मय संभ्रम,
घोर अँधेरी गहरी दरियों में बसता आदिम तम:
स्फीत नाद भर बहते ढहते-जल-स्तंभों-से निर्झर!
निबिड़ गहन में सहसा जगमग जल उठते पट बीजन
हिंस्र व्याघ्र के विस्फारित हरिताभ भयावह लोचन,—
सँकरी घाटी में सर्पों-से स्रोत सरकते सरमर!

झीने कंपित नील कुहासों से परिवृत हो सत्वर
बृहत् गरुत् सा धँसता नभ में पंख मार गिरि प्रांतर,
अर्ध दृश्य गंधर्व लोक सा, छाया पथ में शोभित!
भ्रू विलास करतीं चपलाएं, मंद हास कर प्रतिक्षण,
मुग्ध बलाकों के सँग उड़ता नभ में इच्छाकुल मन;—
चीर वाष्प पट कढ़ता शशि सा रवि, किरणों से विरहित!

हिम के कंचन प्रात, साँझ पावस पंखों पर चित्रित,
स्वच्छ शरद चंद्रिका, दिवस मधु के—क्षितिजों पर मुकुलित,
मर्मर ग्रीष्म समीर लुभाती सौरभ-मंथर, शीतल!
अप्सरियों की पद चापों से कँपते झिलमिल सरिसर,
नृत्य चपल वनश्री के हित नित बिछते कलि किसलय झर,
रंग गंध मधु रज से रहता भू लुंठित छायांचल!

अमरों के मणि मुकुट श्रेणि-से लगते हेम शिखर स्मित
रजत नील नभ-नीहारों से रहते जो चिर वेष्टित,—
इंद्रधनुष छायांशुक का प्रिय उत्तरीय लहराकर!
कल किंकिणि सी विद्युल्लेखा दिपती कटि पर कंपित,
मंद्र स्तनित भर मुरज बजाते घन गंधर्वों-से नित,
स्वतः दीप्त ओषधियों से नीराजन करते किन्नर!

यह भौतिक ऐश्वर्य शुभ्र गरिमा से मन को छूकर
नीरव आध्यात्मिक विस्मय से अंतर को देता भर,—
एक महत् गुण अन्य गुणों को करता नित आकर्षित!
जग जीवन का क्रंदन शोषण हो जाता तुममें लय,
जगता प्राणों में अनंत भावों का वैभव अक्षय,
ऊर्ध्वारोही मौन शांति में भू मन को कर मज्जित!

अब मैं समझ सका महत्व इन शिखरों का स्वर्गोन्नत
नील मुक्ति में समाधिस्थ जो अंतर्नभ में जाग्रत,—
पृथ्वी के शाश्वत प्रहरी-से अंतरिक्ष में शोभित !
जहाँ शुभ्र सोपानों पर चैतन्य विचरता पावन,
स्वर्णिम आकाशों में उड़ता अपलक शोभा में मन,
उच्च नभस्वत में रहता संगीत अनश्वर गुंजित !

मुखरित तलहटियों को, निःस्वर क्षितिजों को अतिक्रम कर
सात्विक शिखरों में जग, मानस में श्रद्धा संभ्रम भर,
स्वर्ग धरा के मध्य शुभ्र दिग् विशद समन्वय-से स्थित,—
भू से रूप विधान, व्योम से सार भाव ले निर्मल,
श्यामल, प्राणोज्वल रखते तुम जग का उर्वर अंचल,
आरोहों के वैभव से अवरोहों को कर कुसुमित !

अप्रकेत तम सागर से उठ, भेद अचेतन के स्तर,
जल थल की अगणित उपचेतन जीव योनियों को तर,
जीवन हरित प्रसार पार कर, रजत देश बहु समतल,
ऊर्ध्वंग उच्छ्रायों के निर्मल नीहारों में नीरव
सत् रज के सतरँग आभासों का कर मन में अनुभव,
शाश्वत शिखरों में निखरे तुम लगते शांत समुज्वल !

रुके मूक भू मानस गह्वर, रुके स्तब्ध गिरि कंदर,
(शातियों के पुंजित तमिस्र से पीड़ित जिनका अंतर !)
बिछे प्रतीक्षा में प्रसार होने को तुमसे दीपित !
धूमिल क्षितिज, गरजता अंबर, उद्वेलित जन सागर,
जड़ चेतन की दृष्टि निर्निमिष लगी ज्योति शिखरों पर,—
मानवता का दिक् प्रशस्त उन्नयन तुम्हीं पर आश्रित !

निश्चय, भूमा की आकृति में यह मृण्मय भू निर्मित,
अन्न प्राण मन जीवन के अक्षय वैभव से झंकृत,—
हरित प्रसारों, नीलोच्छ्रायों, स्वर्ण गहनताओंमय!
यशश्चूड़ तुम इस वसुधा के शाश्वत रश्मि मुकुट भृत,
दिक् शय्या पर चिदानंद-से कालोपरि सत् पर स्थित,
ध्यानावस्थित ऊर्ध्व भाल पर नव लेखा शशि स्मित, जय!